योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 39 अंक : 11-12
फरवरी-मार्च 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

उत्साहो बलवानार्यनास्त्युत्साहात् परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्।।

(वाल्मीकि रामा. किष्कि. 1)

उत्साह ही बलवान होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

(श्रीमद् भागवद् गीता)

इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा 'मन' अधिक श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि अधिक श्रेष्ठ है और बुद्धि की अपेक्षा 'आत्मा' अधिक श्रेष्ठ है।

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावेहि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

(चरक निदान 6-7)

सभी कार्यों को छोड़कर सबसे पहले शरीर के पालन पोषण पर ध्यान देकर शरीर की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि शरीर है तो सबकुछ है और अगर शरीर ही न रहे तो फिर कुछ भी नहीं रहता।

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरं मल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसोपवाति।।

(धम्म पद)

फूलों की सुगन्ध वायु के विपरीत दिशा में नहीं जा सकती, न चन्दन की, न तगर की, न चमेली और बेला के फूलों की सुगन्ध ही जा सकती है। परन्तु सज्जनों के सद्गुणों की सुगन्ध विपरीत दिशा में भी फैलती है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39
अंक 11–12

फरवरी
मार्च
2007

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये

मनोज मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये।।

मन जैसी स्फूर्ति और वायु जैसे वेग वाले,
परम बुद्धिमान्, इन्द्रियनिग्रही, वानरपति,
वायुपुत्र हनुमान जी की शरण लेता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) [illegible] ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 14
3. अनहद नाद – श्री [illegible] 15
4. योग क्या है – श्री बलबीर सिंह, एडवोकेट 16
5. नववर्ष मंगलमय हो! – श्री द्वारका प्रसाद शर्मा 19
6. योग साधना – डॉ. ऋषिराम शर्मा 20
7. भजन – श्री त्रिभुवन नाथ मिश्र 23
8. योग आध्यात्म का सप्त दिवसीय कार्यक्रम – श्री संतोष शर्मा 24
9. श्री कृष्णगोपालजी की स्थूल दर्शन – श्री [illegible] उपाध्याय 26
10. प्राणायाम से स्वास्थ्य रक्षा – डॉ. महेश झा 29
11. सर्वोपयोगी रुद्राक्ष – वैद्य हरिश्चन्द्र शर्मा 33
12. कौन है तू और क्यों आया है? – श्री अशोक शुक्ला 37
13. दैवीय तथा भयानक अज्ञात क्षेत्र में....... – श्री युधिष्ठिर सिंह पुण्डीर 38
14. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् 40

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	800.00

मूल्य वृद्धि की सूचना

मुद्रण एवं कागज के दरों में हुई वृद्धि के कारण 'सिद्धयोग' के शुल्क में बढ़ोतरी के लिए हम विवश हैं। नयी दरें, जो 1 अप्रैल 2007 से प्रभावी होंगी, इस प्रकार निर्धारित की गयी हैं–

एक प्रति	: रु.	11.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	120.00
द्विवार्षिक	: रु.	210.00
आजीवन	: रु.	850.00

–व्यवस्थापक

• हमारा विशेष लेख

चित्त के तीन परिणाम एवं समाधि

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमारे पूर्वजो का सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं वह नहीं है एवं जिस वस्तु का अस्तित्व है वह रहेगा ही रहेगा, केवल मात्र उसमें एक परिणाम विशेष उत्पन्न हो सकता है। इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए योगेश्वरेश्वर जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 16 वे श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा है :–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।

अर्थात् जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं है उसका अस्तित्व कहीं से बनता नहीं और जिसका अस्तित्व है वह कभी बिगड़ता नहीं। प्रत्युत उस वस्तु के परिणामान्तर होते रहा करते हैं, धर्मी लक्षण करते हुये योग–दर्शनकार भगवान् पतञ्जलिदेव ने यह सूत्र लिखा है–

शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी।।

अर्थात् धर्मी वह कहलाता है जो शान्त अर्थात् जो परिणाम समाप्त हो चुका है, उदित जो परिणाम इस समय हो रहा है और व्यपदेश अर्थात् जो परिणाम बाद में होगा, इन तीनों परिणामों में जिसकी सत्ता बराबर कायम रहती चली जाय किन्तु विभिन्न प्रकार के परिणामों से उसमें अन्यत्व का दर्शन होता है, वह धर्म कहलाता है। उस धर्मी के हर स्थान में तीन–तीन परिणाम विभिन्न रूप से प्रकट होते रहा करते है किन्तु धर्मी उन तीनों प्रकार के परिणामों में बराबर बना रहता है।

धर्मी के तीन परिणाम

1. **धर्म परिणाम**, 2. **लक्षण परिणाम** एवं 3. **अवस्था परिणाम**। ये तीनों परिणाम हर एक धर्मी में बराबर होते रहते हैं। उदाहरण के रूप में इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिये, जिस प्रकार मिट्टी एक धर्मी है, उस मिट्टी को पानी से आटे की तरह गोंद करके उसका एक गोला बना लिया। यह उस साधारण मिट्टी का गोला रूप धर्म–परिणाम है और उस गोले के अन्दर गोले को साबित करने वाले जो लक्षण है वे उस धर्मी मिट्टी के बने हुए गोलारूप लक्षण परिणाम है। इसी प्रकार जब वह गोला कुछ दिन रखा रहेगा, सूख जायेगा और उसको बहुत देर रखे रहने से उसमें पुरातनता आ जायेगी तो इसके सुनने वाला, देखने वाला यह कहेगा कि यह गोला मालूम पड़ता है। कई महिने का बना हुआ है इसलिए यह पुराना गोला है, ये उस धर्मी मिट्टी के गोलारूप धर्म परिणाम का अवस्था परिणाम है, इसी प्रकार ये तीनों परिणाम हर तत्व में बराबर होते रहा करते है। वस्तुतः उस वस्तु की सत्ता कहा नष्ट नहीं होती, केवल मात्र उसमें विकृति आती रहती है और वह विकृति जहाँ–जहाँ भी गुण धर्म लागू है तहाँ–तहाँ होगी ही क्योंकि हमारे शास्त्र का सिद्धान्त है –

चलम् हि गुण चित्तम्।

अर्थात् प्रकृति सम्भव तीनों गुण हर समय चल हैं, इसलिए गुण वृत्त में प्रतिक्षण परिणामान्तर होता रहता है। जिस समय मनुष्य जन्म लेता है और छोटा बच्चा बनकर माता के पेट से बाहर आता है उसकी उस समय की आकृति बहुत छोटी होती है। अधिकांश में एक मोटे चूहे की तरह आमतौर पर होती है किन्तु ज्यों–ज्यों प्रकृति उसकी मदद करती है और विभिन्न प्रकार के रस, पेय, खुराक के रूप में उसको मिलते रहते हैं त्यों–त्यों उसकी आकृति में भी परिणामान्तर होता रहता है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। कुछ समय बाद उसका वह स्वरूप जो पैदा होने के समय अधिक से अधिक आधा सेर या तीन पाव वजन का होगा कुछ समय बाद परिणाम पाकर वह युवावस्था को धारण कर लेता है और उसका वह शरीर कई–कई मन वजन की आकृति को धारण कर वृहदाकार में दिखलाई देता है। यह उसके शरीर में प्रतिक्षण होने वाले विभिन्न परिणामों का फल है। इसी प्रकार हमारा चित्त भी गुणात्मक है और इसमें भी हर क्षण परिणाम होते रहा करते हैं।

इससे पिछले लेखों में हमने अष्टांग योग के स्वरूप को दर्शाने का पूरा–पूरा प्रयत्न किया है। उनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि–इन आठ अंगों में से पहले पाँच अंग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार–ये बहिरंग अंग माने जाते हैं क्योंकि इनकी साधना चित्त की बहुमुखी वृत्ति होने पर भी की जा सकती है, सर्वार्थक चित्त होते हुए भी अष्टांग योग के इन पाँच अंगों की साधना की जा सकती है किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि–ये तीनों इन पहले अंगों की अपेक्षा अंतरंग हैं, इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में यह सूत्र कह दिया है–

त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः।

अर्थात् भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हैं–

तदेतद् धारणा ध्यान समाधि त्रयम् अन्तरंग सम्प्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वेभ्यो यमादि साधनेभ्य इति।

अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों अंग सम्प्रज्ञात समाधि के लिए यम, नियम आदि की अपेक्षा अंतरंग हैं। इन्हीं के द्वारा सर्वार्थिक चित्त में एकाग्रता रूप नया धर्म परिणाम आरम्भ होता है। जिस समय मनुष्य धारणा का अभ्यास करता है तो उसको सभी विषयों में व्यापक रहने वाले चित्त में एकाग्रता रूप एक नया परिणाम होना आरम्भ हो जाता है। अब उसके धर्मी चित्त का सर्वार्थता रूप में रहने वाले धर्मी चित्त का एकाग्रता रूप में बदल जाना यह उसका धर्म परिणाम है। इस परिणाम को व्यक्त करते हुए भगवान पतंजलिदेव ने कहा है–

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः।

भगवान व्यासदेव भाष्य करते हैं–

समाहितचित्तस्य पूर्वप्रत्ययः शान्तः, उत्तरस्तत्सदृशः उदितः समाधि चित्तमुभयोरनुगतं पुनस्तथैव आसमाधि भ्रेषादिति स खल्वयं धर्मिणश्चित्तस्यैकाग्रता परिणामः।।

अर्थात् सर्वार्थिक चित्त के अन्दर जब विषयों को ग्रहण करना रूप एक स्वभाव बना हुआ था उसके अन्दर धारणा का अभ्यास करने पर एक नया धर्म परिणाम पैदा हुआ, अभी तक कहने में यह

आता था कि यह हमारा चित्त बड़ा चंचल है सभी विषयों में घूमता है। ये उस चंचल चित्त के लक्षण थे, किन्तु ज्यों ही उस सब विषयों में घूमने वाले धर्मी चित्त के अन्दर एकाग्रता परिणाम पैदा हुआ, उस ही समय उसके अन्दर एकाग्रता के लक्षण भी आ गये थे। उस चित्त के धर्म परिणाम और लक्षण परिणाम दोनों हो गये। इसी प्रकार से ज्यों उस चित्त की एकाग्रता पुरातन की ओर बढ़ती चली जायेगी तो कहने वाले और देखने वाले यही कहेंगे कि भाई देखा उसका चित्त तो बहुत पुराने समय से एकाग्र चला आ रहा है। यह उस चित्त की अवस्था परिणाम हो गया। इसी प्रकार एकाग्र होने पर यह चित्त ज्यों–ज्यों समाधि के दृढ़ अभ्यास की ओर बढ़ता चला जायेगा तो उसका यह एकाग्रता परिणाम भी कालान्तर में अवश्य बढ़ लेगा ही। सम्प्रज्ञात समाधि का एकाग्रता परिणाम वाला यह चित्त सर्वार्थक चित्त की अपेक्षा समाधि के लिए अपेक्षाकृत अन्तरंग हो गया है, किन्तु अभी तक ये अपने चरम लक्ष्य को नहीं पा सका है। अपने चरम लक्ष्य को तभी प्राप्त करेगा जब कि यह अपने आने वाले परिणामों में से निकलता हुआ निरोधावस्थिति को प्राप्त हो जायेगा। ज्यों–ज्यों साधक की एकाग्रता की स्थिति ऊँची बढ़ेगी त्यों–त्यों उसके धर्मी चित्त के अन्दर आगे के नये नये परिणामों के भाव सामने आने प्रारम्भ हो जायेंगे। इस एकाग्रता परिणाम में चित्त के सर्वार्थकता रूप धर्म शान्त हुए अर्थात दब गये एवं एकाग्रता रूप धर्मों का उदय हो गया। चित्त पहले की अपेक्षा सूक्ष्म बन गया और उसने सम्प्रज्ञात योग में प्रवेश पा लिया। इसके बाद किन्तु अभी भी इसकी सर्वार्थकता पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है, इसलिए साधक में दृढ़ अभ्यास के बाद इसके अन्दर समाधि के धर्मों का प्रादुर्भाव होना शुरू हो जायेगा, इसको समझाते हुए भगवान पतंजलिदेव ने निम्नांकित सूत्र में स्पष्टीकरण के साथ–साथ बतला दिया है कि –

सर्वार्थनैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः॥

भगवान व्यासदेव भाष्य करते हैं –

सर्वार्थता चित्तधर्मः एकाग्रता चित्तधर्मः सर्वार्थतायाः क्षयः =तिरोभाव इत्यर्थः एकाग्रताया उदयः=आविर्भाव इत्यर्थः तयोर्धर्मित्वेनानुगतं चित्तं तदिदं चित्तमपायोपजननयोः स्वात्मभूतयोर्धर्मयोरनुगतं समाधीयते स चित्तस्य समाधि परिणामः।

अर्थात सर्वार्थता भी चित्त का धर्म है, और एकाग्रता भी चित्त का धर्म है इससे ज्यों ही चित्त की एकाग्रता उत्कृष्टता को प्राप्त होने लगती है और समाधि की ओर बढ़ने लगी तो चित्त के धर्मों में सर्वार्थता रूप चित्त धर्म का क्षय और एकाग्रता रूप चित्त धर्म का उदय होने पर चित्त के अन्दर समाधि परिणाम आ जाता है। इसमें पहला धर्म दब गया और दूसरे धर्म का उदय हो गया। सर्वार्थता ने चित्त को छोड़ दिया और एकाग्रता की रूढ़ावस्था को प्राप्त करके समाधि की ओर आगे बढ़ गया, इस प्रकार उस धर्मी चित्त का सर्वार्थता रूप अपने धर्म का परित्याग करके एकाग्रतारूप समाधि परिणाम को प्राप्त कर लिया। सर्वार्थता के अन्दर जो चित्त के लक्षण हुआ करते हैं वह उदय हो गये। धर्मी चित्त एकाग्रता रूप लक्षण परिणाम भी साथ के साथ उदय हो गया। इस समाधि को नयी समाधि कहेंगे। कहने वाले लोग इस समाधिस्थ व्यक्ति का परिचय देने के लिए ये कहकर के ही उसका परिचय देंगे कि अरे भाई उसकी तो समाधि अभी नयी–नयी लगी है, उसका चित्त अभी -अभी समाधि परिणाम

की ओर आया है। समाधि के लक्षण तो उसमें प्रगट हो गये हैं किन्तु फिर भी उसकी यह समाधि तो अभी नयी ही है। समाधि को नयी कहना ही समाधिस्थ धर्मी चित्त का यह अवस्था परिणाम है। इसी प्रकार ज्यों–ज्यों साधक का चित्त समाधि का दृढ़तर अभ्यास करते हुए निरोधाभिमुख होगा तो उस धर्मी चित्त के अन्दर निरोध रूप एक नया परिणाम पैदा हो जायेगा। उसका परिचय दिलाते हुए भगवान् पतंजलिदेव ने निम्नलिखित सूत्र में स्पष्टीकरण किया है–

व्युत्थाननिरोध संस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोध परिणाम:।।

इस सूत्र का भगवान व्यासदेव भाष्य करते हैं –

व्युत्थान संस्काराश्चित्तधर्मा न ते प्रत्ययात्मक इति प्रत्ययनिरोधे न निरुद्धाः निरोधसंस्काराऽपि चित्तधर्माः तयोरभिभव प्रादुर्भावौ व्युत्थानसंस्कारा हीयन्ते, निरोधसंस्कारा आधीयन्ते, निरोधक्षणं चित्तमन्वेति तदेकस्य चित्तस्य प्रतिक्षणमिदं संस्कारान्यथात्वनिरोध परिणाम:, तदासंस्कार शेषं चित्त मिति निरोध समाधौ व्याख्यातम्।

अर्थात् व्युत्थान भी चित्त धर्म है और निरोध भी चित्त धर्म है, सम्प्रज्ञात समाधि के अन्दर होने वाले चित्त के धर्म व्युत्थानात्मक थे। यद्यपि वह चित्त एकाग्र था और समाहित था, उसके अन्दर सिद्धि शक्तियों का वास हो चुका था, शक्तिशाली था किन्तु फिर भी सम्प्रज्ञात समाधि की यह स्थिति निरोध स्थिति की अपेक्षा व्युत्थानावस्था ही है। इस स्थिति मे चित्त के एकाग्रता के रूप समाहित स्थिति में जो सिद्धियाँ मनुष्य को प्राप्त होती हैं व निरोध के लिए भगवान पतंजलिदेव ने स्वयं उपसर्ग रूप मानी हैं :–

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धय:।

भगवान व्यासजी भाष्य करते हैं :–

ते प्रातिभादय: समाहितचित्तस्योत्पद्यमाना उपसर्गा:, तद्दर्शनप्रत्यनीकत्त्वाद् व्युत्थितचित्त्स्योत्पद्यमाना: सिद्धय:।।

अर्थात् सम्प्रज्ञात योग में होने वाली सिद्धियाँ उसी स्थिति मे अर्थात् व्युत्थानावस्था में वह सिद्धियाँ है। निरोध स्थिति के लिए तो वह भी उपसर्ग भूत है अर्थात् निरुद्धावस्था में वह सिद्धियाँ भी एक प्रकार की अन्तराये है। समाहित चित्त के निरोध परिणाम के लिए निरोधात्मक संस्कारो का प्रादुर्भाव होगा और व्युत्थानात्मक संस्कारों का आविर्भाव होगा तो इस प्रकार धर्मी चित्त के व्युत्थानात्मक संस्कार दब जायेंगे और निरोधात्मक संस्कार प्रादुर्भूत हो जायेंगे। निरोध स्थिति के अन्दर चित्त वृत्ति संस्कार मात्र से शेष रहती है अर्थात् निरुद्धावस्था साधक की निर्बीज समाधि है, इनमें चित्त की वृत्तियाँ सब प्रकार से शान्त हो जाती हैं, फिर भी क्योंकि निरुद्धावस्था भी चित्त के धर्म हैं और व्युत्थानावस्था भी चित्त के धर्म हैं। इसलिए व्युत्थानात्मक चित्त के धर्म दब जाते है। निरोधात्मक प्रादुर्भूत हो जाते है। ऐसी अवस्था मे चित्त का प्रवाह बहुत शान्ति के साथ बहने लगता है, क्योंकि उसके व्युत्थानात्मक धर्म समाप्त हो चुके हैं और निरोधात्मक का जन्म हो चुका है। यहाँ आकर

के चित्त की वृत्ति केवल वृत्तिरूपेण अवशेष ही मानी जायेगी और निरुद्ध हो जाने के बाद वह भी संस्कार वश अपने कारण में लय हो जायेगी। गुणों का गुणों में अवस्थान हो जायेगा। यहाँ तक कि ये समाधियाँ सबीज समाधि कहलाती है। यहाँ तक संस्कार का बीज बना रहता है। उपरोक्त समाधियों को ही सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत क्रमशः प्रगट होती रहती है। शब्द–अर्थ और ज्ञान के विकल्पों से मिली हुई समाधि **सवितर्क समाधि** कहलाती है। यह सम्प्रज्ञात योग की पहली स्थिति है। ज्यों–ज्यों इसका अभ्यास योगी दृढ़ मन से बढ़ाता चला जाता है और अपने अभ्यास में कोई अन्तराय पैदा नहीं होने देता और उसके निरन्तर अभ्यास से समाधि उत्तरोत्तर साफ होती चली जाती है जिसमें जाकर के योगी को अपने नाम सत्तारूप स्वरूप का आभास नहीं होता उनको निर्वितर्क समापत्ति हकते है। इस समाधि का लक्षण भगवान पतंजलिदेव ने इन शब्दों में किया है –

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरुपशून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितका।

अर्थात् स्मृति की निर्मलता बढ़ जाने के बाद जिसमें केवल अर्थमात्र निर्भासित होता रहे उसको निर्वितर्का समापत्ति कहते हैं। जब तक उसमें शब्द की प्रतीति होती रहती है तब तक वह समाधि निर्वितर्का नहीं कहला सकती। जब स्मृति के दूर हो जाने पर केवल मात्र अर्थ मात्र ही भाषित होता रहे तभी वह समाधि निर्वितर्का कही जा सकती है। यद्यपि इस अवस्था में भी ज्ञान ही अवश्य बना रहता है, किन्तु वह नहीं के बराबर होता है। एक प्रकार से अपने ग्रहण स्वरूप को त्याग कर वह ग्रहणा कार्य हो जाता है। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने – '**स्वरूप शून्य इव**' – इस सूत्र का प्रयोग किया है, योगदर्शन के सत्रहवें सूत्र में जो स्थूल विषय मे वितर्कयोग कहा है उसी में ये सवितर्क और निर्वितर्क दो भेद हैं इन्हीं को योगयों की परिभाषा में निर्विकल्प और सविकल्प भी कहते है। इस प्रकार से ये दोनों समाधियाँ स्थूल विषयात्मक ही हैं। इसी प्रकार से जब योगी का मन इससे आगे उठता है तो इससे सूक्ष्म विषयों में उसका चित्त समाहित हो जाता है और सविचार और निर्विचार समाधि का स्वरूप हुआ करता है। जब तक सूक्ष्म विषय देशकाल और निमित्त के साथ आभाषित होता है और शब्द ज्ञानादि की उसमें अनुभूति बनी रहती है तब तक वह समाधि सविचार समाधि कहलाती है और उसमें जा करके लक्ष्य का साक्षात्कार करते–करते देशकाल निमित्त आदि भूल जाते हैं। इसी समाधि का नाम निर्विचार समाधि है, इस समाधि का विषय मूल प्रकृति तक पहुँच जाता है। महाभूतों का साक्षाकार करना स्थूल विषय कहलाता है, उसमें सवितर्का और निर्वितर्क समाधि ही हो सकती है। उससे जब सूक्ष्म विषय में योगी का प्रवेश होता है और महाभूतों की अपेक्षा गन्ध तन्मात्र, रस तन्मात्र, रूप तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र एवं शब्द तन्मात्र आदि तन्मात्राओं का ज्ञान उपलब्ध कराती है तो ये पंच महाभूतों की अपेक्षा सूक्ष्म हैं, इसमें ही चित्त के समाहित होने से सविचार और निर्विचार समाधि बनती है। किन्तु सूक्ष्मता का विषय और भी आगे बढ़ जाता है, पंच तन्मात्राओं के बाद अहंकार के बाद महत्तत्व और महत्तत्व से प्रकृति सूक्ष्म है, यद्यपि प्रकृति से भी पुरुष और सूक्ष्म है किन्तु यहाँ पर यह सूक्ष्मता मूल प्रकृति पर्यन्त ही पहुँचती है। पुरुष साक्षात्कार का विषय आगे चल करके स्पष्ट हो जायेगा, यहीं पर सूक्ष्मता का अभिप्राय उपादान कारण तक है क्योंकि प्रकृति ही पंच महाभूत, पंच तन्मात्रायें, अहंकार, महँतत्व आदि सब को जन्म देने वाली है। एक प्रकार से वह प्रकृति ही रूपान्तरित होकर इनके अन्दर भाषित होती रहा करती है। पुरुष प्रकृति का उपादान करण नहीं है इसलिए ये

समाधियाँ सबीज समाधि कहलाती है। जब निर्विचार समाधि की निर्मलता बढ़ती है तब उसकी समाधि का प्रवाह भी निर्मल होता चला जाता है और उसकी समाधि प्रज्ञा अति निर्मलता को प्राप्त हो जाती है। अब उसको प्रकृति पर्यन्त सब पदार्थ इस प्रकार दिखलाई देने लगते हैं जिस प्रकार शीशे के अन्दर रखी हुई वस्तुयें आभासित होती रहा करती है। ऐसी स्थिति में आकर योगी प्रज्ञा प्रसाद पर आरूढ़ होकर सांसारिक लोगों को इस प्रकार देखा करता है जिस प्रकार पर्वत शिखर पर खड़ा हुआ व्यक्ति भूमि को देखा करता है।

प्रज्ञा प्रसादमारुह्याशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानि शैलस्थः सर्वान प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् बुद्धि महल पर खड़ा हुआ योगी आप अशोच्य हो जाता है, उसको अपनी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती ; किन्तु दुःख–द्वन्द्वों में तपे हुए मनुष्यों की उसको चिन्ता रहा करती है। जिस प्रकार पहाड़ की उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जिस प्रकार भूमिस्थ प्राणियों को साफ–साफ देख लिया करता है इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने बुद्धि की निर्मलता को पूर्णरूपेण प्राप्त कर लिया है वह संसार के प्राणिमात्र को जिन स्थितियों में हुआ करते है स्पष्ट देख लिया करते हैं।

एक उदाहरण

मेरे श्री गुरुदेव महाराज श्री योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज जब नेपाल हिमालय से अधम लोगों के उद्धार के लिए उतर कर भूमि पर आये और उन्होंने संसार में आकर के योग की विशुद्ध परिभाषायें समझाकर योग प्रचार करना आरम्भ किया। उस समय कोई–कोई लोग जब उनसे इस प्रकार के प्रश्न किया करते थे कि उनका इस भूमण्डल पर आगमन किस प्रकार हो गया? तो उसका उत्तर श्रीगुरुदेव जी अपने शब्दों में इस प्रकार कहा करते थे कि – भाई क्या बतलायें हमने वहाँ बैठे हुए भी संसार के जीवों को तड़पते हुए देखा है तो ह्रदय में दयाभाव पैदा हुये, कुछ उन परमपुरुष की इसी प्रकार की इच्छा थी। अतः हम वहाँ से चले आये और यहाँ आकर यह कार्य करना आरम्भ किया। श्री गुरुदेव जी ने हिमालय से उतर कर योग का वह अमर उपदेश करना शुरू किया जिस मार्ग को पाकर के संसार के अधम प्राणी भी उस पवित्र प्रकाश को देखने लगे और वह सामर्थ्य वाले बन गये कि उनके द्वारा और भी हजारों जीव उस पवित्र प्रकाश को पाकर कृतार्थ हुए। श्री आनन्दकन्द परमकृपा सागर श्री गुरुदेव जी की महिमा को स्पष्ट शब्दों में बतलाते हुए एक श्लोक लिखा है, मैं उस श्लोक को बार–बार पढ़ा करता हूँ, यह श्लोक उनकी परम करुणान्वित्ता का पूर्ण परिचय है। श्लोक इस प्रकार है –

यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावनाः। भवन्ति संसार सुतारणाश्शिवाः।।
योगीश्वराणां परमेश्वरम् हरिं। श्री रामलालः प्रभुमीश माश्रये।।

अर्थात् जिनकी कृपा के एक कण को पाकर के अत्यन्त पतित भी परम पवित्र होकर संसार सागर से तराने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, मैं उन योगेश्वरों के ईश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को बार–बार नमस्कार करता हूँ। यहाँ तक कि समाधियाँ जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है जो चित्त के उत्तरोत्तर परिणामों के साथ प्राप्त होती रहा करती है वह समाधियाँ सबीज समाधियाँ है। जिस समय निर्विचार समाधि निर्मल होती है तो मनुष्य को अध्यात्म प्रसाद प्राप्त होता है। भगवान

पतंजलिदेव ने लिखा है -

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः।

इस सूत्र का भगवान व्यासदेव भाष्य करते हुए कहते हैं -

अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धिसत्वस्य रजस्तमोभ्यमनभिभूतः स्वच्छः स्थिति प्रवाहो वैशारद्यम, यदा निर्विचारस्य समाधेर्वैशारेद्यमिदं जायते तदा योगिनो भवत्यध्यात्मप्रसादः भूतार्थ विषयः क्रमाननुरोधी स्फुटप्रज्ञाऽऽलोकः तथा चोक्तं।

अर्थात् अशुद्धि का आवरण जिसका समाप्त हो चुका है, रज, तम के प्रवाह से निष्फल हुआ, प्रकाशात्मक, पवित्रतम, बुद्धि सत्व का जब पूर्ण पवित्र प्रवाह बहने लगता है तो मनुष्य को स्फुट प्रज्ञा लोक हो जाता है। योगियों की परिभाषा में इसी का नाम अध्यात्म प्रसाद , प्रज्ञा प्रसाद, स्फुट प्रज्ञा लोक, ऋतम्भरा प्रज्ञा, सत्व पुरुषान्यताख्याति आदि-आदि नामों से कहा गया है। निर्विचार समाधि की निर्मलता में मनुष्य की ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा:।

यह ऋतम्भरा प्रज्ञा अन्वार्या है अर्थात् उस समाहित चित्त में जो बुद्धि पैदा होती है उसी का नाम ऋतम्भरा है और क्योंकि यह सत्य को ही धारण करती है इसलिए इसका नाम ऋतम्भरा है -

ऋतम् सत्यमेव बिभर्ति।

अर्थात् इसमें किसी भी प्रकार का मिथ्या ज्ञान नहीं होता। इस बुद्धि का विषय आगम और अनुमान से भिन्न होता है क्योंकि वेद शास्त्रों में उपदिष्ट बातें प्रत्यक्षानुभूति में नहीं आई हुई होतीं। इसी के अनुमानित विषय भी प्रत्यक्ष पूर्वकता होते हैं किन्तु उनका प्रत्यक्ष उस समय का यथार्थ प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिए उनके यथादर्शन के बिना मनुष्य की बुद्धि में भ्रम भी हो सकता है किन्तु ऋतम्भरा प्रज्ञा के अन्दर उस भ्रम का लवलेश भी नहीं होता। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट कह दिया -

श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात्।

अर्थात् श्रुत और अनुमान वाली जो बुद्धि होती है उससे ऋतम्भरा प्रज्ञा का विषय कुछ और ही प्रकार का है क्योंकि ये विशेष अर्थवाली है। अन्य समाधियों में पंचभूत और तन्मात्राओं का योगी पूर्णरूपेण साक्षात्कार नहीं कर पाता। किन्तु निर्विचार समाधि की निर्मलता में यह हस्तामलकवत स्पष्ट ज्ञान कराने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ही उसका बल है, जिस समय यह बुद्धि पैदा हो जाती है, अन्य सब संस्कारों को रोक देती है। इसके अपने ही संस्कार कायम रहते हैं और इसके संस्कार उन सब संस्कारों से बलवान् होते हैं। इस ऋतम्भरा प्रज्ञा के अन्दर योगी के मन में जो संकल्प बनेगा वह सत्य बनेगा, जो देखेगा सत्य देखेगा। यहाँ आकर के ही मनुष्य सिद्धान्तों का निर्णायक बन जाता है और उसका ज्ञान प्रलवन रहित बनता है क्योंकि इससे मिथ्यात्व का लवलेश भी नहीं रहता, इस प्रकार के बहुत से महात्मा देखने में आते हैं जिनको हर वस्तु का यथार्थ ज्ञान तत्काल हुआ करता है। वे जो कुछ देखते हैं सत्य देखते हैं, जो कुछ सुनते हैं सत्य सुनते हैं, जो कुछ करते हैं सत्य करते हैं। आजकल के

अभ्यास इस चरम स्थिति तक पहुंच नहीं पाते – थोड़ी बहुत अनुभूतियों का ही आधार लेकर वे अपने आप को सत्य दृष्टा कहने की चेष्टा किया करते है। और उसके परिणामस्वरूप बहुत सी गलत बातों का प्रचार होता है जो लोकहित की अपेक्षा लोकों के अनिष्ट का कारण बन जाते है। पिछले दिनों में लोगों ने हमारे भारतवर्ष मे कई एक भविष्य वाणियां की किन्तु परिणाम मे असत्य ही रही, उसका कारण मात्र केवल इतना ही था कि अभी उनकी बुद्धि ऋत को धारण करने वाली बन नहीं पायी थी। इसलिए कच्ची स्थिति मे ही मान–सम्मान की भूख में भूत भविष्य की बाते कहने लगते है। परिणाम वे असत्य निकलती है जैसे पिछले दिनों अभी दो–चार वर्ष पहले इटली के किसी योगी ने 14 अगस्त को प्रलय की घोषणा की थी और उसका काफी प्रचार हुआ किन्तु वे सब बाते अयथार्थ थी। ऋतम्भरा प्रज्ञा के बिना मनुष्य को समाधि स्थिति में भी सभी अनुभव सत्य नहीं होते, क्योंकि उन अन्य समाधियो मे रज और तम की मात्रायें अवशेष रहती है। एक प्रकार से साधक के सामने उसका अपना मन ही ऋत जैसा रूप धारण करके खड़ा हो जाता है। किन्तु उसके अन्दर ऋत का लवलेश भी नहीं रहता और अपने ही मन की अनुभूति से वह दु:ख को खरीद लेता है। यह अवश्य होता है कि समाधि की पहली भूमिका में भी कभी–कभी उत्तर भूमिकाओं का ज्ञान होने लगता है। और उसका कारण केवल मात्र हृदय में निवास करने वाले सर्वशक्तिमान प्रभु की प्रेरणा ही होती है जो साधक की छोटी भूमिकाओं में भी अवान्तर भूमिकाओं का बोध होने लगता है और कितनी ही बाते सत्य अनुभव में आने लगती है। यह सब उस पुरुष विशेष परमात्मा की अहैतुकी कृपा का परिणाम होता है जो साधक को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है। अन्यथा ऋतम्भरा प्रज्ञा तो निर्विचार समाधि की निर्मलता मे ही मनुष्य को प्राप्त हो पाती है –

एक उदाहरण

एक स्थान पर एक अच्छे योगाभ्यासी साधक निवास करते थे। उनको अपने ध्यानाभ्यास की स्थिति मे बड़े–बड़े दिव्यानुभव होते रहते थे। लोक–लोकान्तरों का दर्शन होता था। उनके गुरुदेव उनके निर्माण चित्त का आश्रय लेकर कई प्रकार के उपदेश किया करते थे। क्योंकि उस साधक की समाधि उत्तरोत्तर निर्मलता की ओर बढ़ रही थी, इसलिए वह अपनी स्थिति मे हर एक स्थिति को ही सत्य समझने लगे क्योंकि वह अपने ही समाधि ज्ञान को सत्य समझ बैठे थे। किन्तु समय के बाद यकायक ऐसा हुआ कि उन्होंने ध्यानयोग मे अपने गुरुदेव से उपदेश सुना और उनकी कही हुई बात पर अमल करने लगे। जब उनके गुरुदेव उनको मिले तो उन्होंने बतलाया कि यह तुम्हारी यथार्थानुभूति नहीं है। तुमने अपना यह कदम गलत उठा लिया है। साधक को आश्चर्य हुआ। कारण इसका केवलमात्र इतना ही था क्योंकि अभी उसको निर्विचार वैशारद्य प्राप्त नही हुआ था। इसलिए प्रज्ञा विवेक निर्मल नहीं था और उसने अपनी अनुभूति के गलत को सत्य समझ लिया निष्कर्ष गलत रहा।

निर्विचार वैशारद्य स्थिति का एक और उदाहरण

उपरोक्त पंक्तियों मे निर्विचार वैशारद्य को भली प्रकार समझाने का प्रयत्न किया गया है। ज्यों–ज्यों साधक के प्रयत्न से निर्विचार समाधि निर्मलता को प्राप्त होती है त्यों–त्यों उसका बुद्धि विवेक भी उत्तरोत्तर निर्मल होता चला जाता है और बुद्धि ऋत को धारण करने वाली बन जाती है। ऐसी स्थिति मे योगी बिल्कुल सत्य संकल्प होता है, सत्य दृष्टा होता है। वह जो कुछ देखता है सत्य

देखता है, जो कुछ सुनता है सत्य सुनता है। उसके अनुभव में कभी भी मिथ्यात्व नहीं होता। ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद योगी के संकल्प में ही पूर्णतया सिद्धियों का वास हो जाया करता है। उसके संकल्प कभी भी मिथ्या नहीं होते हैं, इसलिए उसको सिद्धि उपयोग की आवश्यकता नहीं रहती। उसका संकल्प स्वयं ही महाशक्तिशाली रहता है।

एक स्थान पर एक अच्छे उच्चकोटि के महात्मा निवास करते थे। उनका प्रज्ञा विवेक इतना निर्मल था कि जो होनहार होती वह पहले से ही उनके मन में आभासित होने लगती और थोड़ी देर के बाद वह घटना यथार्थरूप में घटित हो जाती। वे स्थान–स्थान वन–वन में नगरों के अन्दर घूमते रहा करते थे। एक बार वे श्रीमथुराजी से श्रीगोवर्धन की यात्रा कर रहे थे। एक और ब्रह्मचारी उनके साथ थे। थोड़ी दूर चलने पर अपने साथ के ब्रह्मचारी से पूछा कि भाई क्या तुम्हें भूख लगी है? उनके साथी ने जवाब दिया कि हाँ! मुझे भूख लगी है, पर इस जंगल में क्या हो सकता है? उस महात्मा ने वहीं उस जंगल में एक जड़ी उखाड़ कर पानी में मिलाई। थोड़ी देर के बाद वह दही की तरह जम गयी, वह उन्होंने अपने साथी ब्रह्मचारी को खिला दी व स्वयं भी खा ली। जड़ी में अति बल था, उसके खाने से ब्रह्मचारी ने अनुभव किया कि शरीर में नई स्फूर्ति पैदा हुई है, उत्साहवर्द्धन हुआ। थोड़ी दूर और आगे बढ़े, महात्मा ने अपने अर्धोन्मीलित नेत्रों से ध्यानमग्न रहते हुए अपने साथी ब्रह्मचारी से कहा भाई! हमारे मन में ऐसा विचार आ रहा है कि यहाँ आगे आने वाले गाँव में एक पटवारी रहता है, वह हमारे तुम्हारे लिए भोजन तैयार करा रहा है। क्योंकि हमारे मन में ये विचार आये हैं। इसलिए सत्य ही है और हमें तुम्हें वह रास्ते पर मिलेगा। पटवारी की आकृति उस महात्मा ने पहले ही बता दी। थोड़ी देर के बाद जब वह आगे बढ़े तो वस्तुतः वही पटवारी गाँव के बाहर खड़ा था। जब ये दोनों महात्मा आगे बढ़े तो उस पटवारी ने नमस्कार किया और आदरपूर्वक प्रार्थना की कि महाराज! मैं बहुत देर से यह सोच रहा ही रहा था कि कहीं से दो महात्मा आ जायें तो भोजन कराऊँ। मेरे मन में था कि कोई दो महात्मा आ रहे होंगे, मेरे बड़े भाग्य से आप दोनों आ गये हैं। कृपा करके मेरे घर भोजन करें। उस पटवारी ने कहा कि मैं जैसा चाहता था उसी प्रकार के दो महात्मा मुझे मिल गये। वह दोनों को आदरपूर्वक अपने घर ले गया और वहाँ जाकर उसने बहुत शुद्धि के साथ बनाया भोजन कराया। पटवारी वैष्णव था। शुद्ध घी से पकवान तैयार कराया था, भोजन करने के उपरान्त वह महात्मा और उनके साथी ब्रह्मचारी राधाकुण्ड चले गये। ब्रह्मचारी ने अनुभव किया कि उनके साथी महात्मा को प्रज्ञा विवेक है और निर्विचार वैशारद्य स्थिति पूर्णरूपेण प्राप्त है। जो व्यक्ति मन के तीनों परिणाम को भली प्रकार से समझते हुए संयम को उपलब्ध करते हैं वे अपने उच्चतम लक्ष्य को पूर्णरूपेण प्राप्त कर लेते हैं। निर्विचार वैशारद्य में जो ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रगट होती है उसके संस्कार अन्य सभी संस्कारों को रोक देते हैं।

तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी।

अर्थात् उस ऋतम्भरा प्रज्ञा के उत्पन्न हो जाने के बाद अन्य सभी संस्कार रुक जाते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा के सामने सभी संस्कारों का रुक जाना अनायास ही सिद्ध हो जाता है। केवल मात्र यह ऋतम्भरा प्रज्ञा ही अस्मि प्रत्यय का रूप धारण करके निर्माणोन्मुखी वृत्ति के रूप में शेष रह जाया करती है। ऐसी स्थिति में ही जा करके योगी अपने आपको सर्व व्यापक परमात्मा से अभिन्न देखता है और अस्मि **'मैवेद मिदं सर्व'** इसका अनुभव करता है। किन्तु तब चित्तशक्ति अपने स्वरूप में स्थान

ग्रहण करती है तब यह वृत्ति भी स्वमेव शान्त हो जाया करती है जैसे अग्नि रुई के ढेर को जला कर अपने आप भी शान्त हो जाती है। वैसा ही इस वृत्ति का स्वरूप होता है और यह भी अन्य सभी संस्कारों को विलीन करके अपने आप भी अपने कारण में लय हो जाती है। ऐसी स्थिति को ही निर्बीज समाधि कहा करते हैं। भगवान पतञ्जलिदेव कहते हैं –

तस्यापि निरोधे सर्व निरोधान्निर्बीजः समाधिः।

भगवान व्यासदेव जी भाष्य करते हुए लिखते हैं –

स न केवलं समाधि प्रज्ञा विरोधी प्रज्ञाकृतानां संस्काराणामपि प्रतिबन्धी भवति कस्माद् ? निरोधजः संस्कारः समाधिजान् संस्कारान बाधत इति, निरोधस्थितिकाले क्रमानुभवेन निरोध चित्तकृत संस्कारास्तित्वमनुमेयम्।।

अर्थात् यह केवल समाधि प्रज्ञा की ही विरोधी नहीं है, प्रत्युत समाधि प्रज्ञा के द्वारा होने वाले संस्कारों को भी रोकती है। क्योंकि निरोध के संस्कार समाधि के संस्कारों को रोकते है। निरोध संस्कार काल में निरोध चित्त के ही संस्कार रहते है अन्य संस्कार सब रुक जाते है। इसी प्रकार से मनुष्य अपने परम पुरुषार्थ को पाकर के परम श्रेय का भागी बन जाता है एवं गुणों का अवसान हो जाने के बाद वह कैवली भाव को प्राप्त होता है।

■ ■ ■

वीतरागी महापुरुषों में अथवा भगवान् कृष्णादि इष्टों में मन–बुद्धि लय हो जाने पर वे लोग जिस स्थिति में रहा करते हैं, उसी स्थिति में साधक रहने लगता है। क्योंकि उनका प्रकृति एवं अविद्यादि क्लेशों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, अतः साधक के भी अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अन्तर्जगत में प्रवेश करने का प्रयत्न करो। जो पवित्र योगमार्ग में चलने लगेगा, सर्वशक्तिमान् श्री प्रभुजी उसकी सब प्रकार से सहायता करेंगे। जो थोड़ा भी अन्तर्जगत में प्रवेश पा जाता है, उसको अगला मनुष्य जीवन मिलने में कोई कठिनाई नहीं। उसे अवश्य–अवश्य ही मनुष्य जीवन मिलेगा ही मिलेगा।

(गुरुदेव वचनामृत भाग–1 से)

सम्पादकीय

सिद्धयोग - हमारी प्यारी पत्रिका

प्रिय पाठकवृन्द/भाई–बहिन,

जयगुरुदेव की !

क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 39 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 40 वे वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान् ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरुह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है, ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है – **आत्मा वा अरेदष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिये। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिये। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिये। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिये। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग् दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं

कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन-पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं – **'संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिये 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिये। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते है कि – 'स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्' अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिये। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिये। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामिग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुत: स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अत: समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जावेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बनालें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

आपका

डॉ0 बाबूलाल शर्मा

अनहद नाद

लेखक
वीरेन्द्र हमदम
गोरखपुर

मेरे एकात्म का अद्वैत से संवाद होता है,
किसी को क्या पता मुझमें जो अनहद नाद होता है।
निरंतर अपनी अन्तश्चेतना को प्यार से सींचो,
इसी की जड़ में जीवन–राग का आस्वाद होता है।
तू अपने सारे कामों से निबटकर अस्त हो जाए,
तुझे क्या इल्म ऐ सूरज ! जो उसके बाद होता है।
नहीं पेड़ों में फल यूँ ही, सुमन खिलते नहीं यूँ ही,
जहाँ पर लोग हों योगी, वहीं आह्लाद होता है।
हरापन रहते इसको सींच लो तो काम बन जाये,
उजड़ जाने पे कोई दिल फिर कहाँ आबाद होता है।
नदी अक्सर ही तट को काटती है लहरों से,
अगर कटते किनारों का सदा प्रतिवाद होता है।
महल के सारे वारिस अपनी–अपनी ईंट गिनते हैं,
महज यह ऊपरी ही तौर पर प्रासाद होता है।
समन्दर चाँद की चाहत में आपा खो दिया करता,
कहो तुम ज्वारभाटा, मैं कहूँ उन्माद होता है।
खुद अपनी आग में जल जाए 'हमदम' होलिका दुःख की,
जिसे कुछ भी न आए आँच वह प्रह्लाद होता है।

शोक संवेदना

• महमूरगंज वाराणसी निवासी श्री प्रमोद कुमार गुप्ता का 25 जनवरी को लम्बी बीमारी के बाद देहावसान हो गया है। वे 75–76 वर्ष के थे। गुरुदेव के प्रिय बच्चों में से थे। इस दुःख के अवसर पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

• अहमदाबाद निवासी श्री अरुण कुमार मिश्र के छोटे पुत्र नीरज का 24 दिसम्बर को हृदयाघात के कारण देहावसान हो गया। वे 35 वर्ष की अल्पायु में ही नश्वर संसार को छोड़ गये। दुःखी परिवार को इस महान दुःख को सहन करने की प्रभु शक्ति दें।

• यह सूचित करते हुए अत्यंत दुःख हो रहा है कि इलाहाबाद निवासी श्री त्रिलोकी नाथ अग्रवाल का 31 जनवरी को देहावसान हो गया है, वे पिछले कुछ दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे। गुरुदेव के पुराने प्रिय बच्चों में से थे। इलाहाबाद में शिविर के संचालन में उनका बड़ा योगदान रहता था। वे 75 वर्ष के थे। श्री प्रभुजी उनके परिवार के दुःखी सदस्यों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करें। सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

—सम्पादक

योग क्या है?

बलवीर सिंह एडवोकेट, बरहन (आगरा)

वैसे तो ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु जगम, स्थावर ऐसी नहीं है जो किसी न किसी के योग से निर्मित या उपजी न हो। यह बात कथित भौतिकवादी वैज्ञानिकों की भी विभिन्न थ्योरियों, सूत्रों, विश्लेषण–सश्लेषण से सिद्ध होती है। और उसी की मात्र कुछ उपलब्धियों पर यह संसार इठला रहा है। परन्तु यहाँ पर हम जिस योग की चर्चा कर रहे है, वह आध्यात्मिक, कल्याणकारी, जन–जन के लिए नितान्त आवश्यक, अन्तिम सच्चिदानन्द व सर्वेश्वर की दृश्य व अदृश्य सत्ता को देखते हुए अपने शरीर रूपी इस पिण्ड मे उस ब्रह्माण्ड नायक को देखकर, जगाकर सच्चिदानन्द रूप से तारतम्य व एकीकार होकर अथवा आत्मारूपी परमात्मा के साक्षात्कार के बाद शरीर के रहते या बाद मे भी उसी परमात्मा मे लयता प्राप्त करके संसार के क्षणिक व बनावटी सुखों को तिलाजलि देकर निरन्तर उसी सत्ता मे स्थापित होकर मृत्यु अथवा काल की भयावहता से बचकर सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसी दास जी की '**कबहुँ काल न व्यापिहि तोही सुमिरेसुभजेसु निरन्तर मोही।**' को सिद्ध करना है।

निरन्तर भजने व चिंतन मनन की स्थिति बिना योग के नही बन सकती है। क्योंकि निरन्तर चिंतन, भजन से शनै–शनै अहं ब्रह्मास्मि – सोऽहमस्मि वृत्ति साधक की बनकर वह कैवल्यम् या ऋतम्भरा या तत्वज्ञान की ओर प्रस्थान शुरू कर देता है। और इसके परिपक्व होने पर श्री गोस्वामी जी के ये शब्द –

सोहमस्मि इतिवृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोईपरमप्रचंडा।।

आतम् अनुभव सुख सुप्रकाशा। तवमव मूलभेद भ्रमनाशा।।

पुनः सिद्ध हो जाते है। श्री गोस्वामी जी के श्रीरामचरित मानस मे भक्ति भाव की समुद्र जैसी गहराई के साथ योग व ज्ञान के सूत्रों का सुन्दर वर्णन होते हुए भी अधिकाश पाठक, भक्तजन अथवा कथावाचक उन्हें न छूने व क्रियात्मक न होने से विज्ञानी नही बनते, इससे वे योग विद्या या साधना के प्रति ज्ञान की लालसारूपी संस्कारों के प्रति अधूरे ही रह जाते है। इसीलिए इस चरणदास ने यह छोटी सी कृति श्री रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड के संदर्भ से ही शुरू की है।

योगदर्शन मे महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रन्थ के द्वितीय सूत्र मे '**योगश्चित्त वृत्ति निरोधः**' कहकर योग की परिभाषा सम्यक् रूप से की है। जिसका अर्थ है कि चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध ही योग है। संस्कृत मे योग युज् धातु से बना है। जिसका अर्थ मिलना – जीवात्मा का परमात्मा से मिलना। प्राण एवं अपान का सहस्त्र दल से मिलना। कुण्डलिनी शक्ति का अपने शिव से मिलना आदि। अर्थात योग नाम है समाधि का। अर्थात् 'योग' साधन का नाम है – परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार करके उनसे मिलने का।

उपनिषद् कहता है कि –

ते ध्यान योगानुगता अपश्य–देवात्म शक्ति स्वगुण निर्गूढाम।
यः कारणानिनिखिलतानि कलात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येक:।।

अर्थात् जिन्होंने ध्यान योग का अनुगमन कर या उसमें समाहित हो अपने गुणों से आच्छादित परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार किया। वह परमात्मा अकेले ही काल से लेकर आत्मापर्यन्त समस्त कारणों के अधिष्ठान हैं। अर्थात् परमात्मा सभी दृश्य व अदृश्य जगत का कारण है। (श्वेत उप.)

आगे भी **'चित्तैकाग्य तदेव योगोयुज्यते'** अर्थात् चित्त की एकाग्रता का नाम योग है।

श्रीमद्‌भगवत गीता के अनुसार 'त विद्यात दुख सयोग वियोग योग सज्ञितम' अर्थात दुख के संयोग का जो वियोग करावे उसे योग कहते हैं। उसे ऐसे भी कह सकते है कि जिसमें दुःख का स्पर्श या मिलन ही न हो वह योग है। गीता में पुनः श्रीभगवान ने दूसरे अध्याय के एक श्लोक में **'सिद्धय सिद्धयोः समोभूत्वा समयोग उच्यते।'** कह कर समत्व को भी योग कहा है। जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य जी ने योग के अप्रत्याशित ग्रंथ गीता में द्वितीय अध्याय के भाष्य में योग, योग बुद्धि एवं योगी के बारे में बहुत ही सुन्दर भाष्य करते हुए कहा है कि **'मोक्ष साधनानुष्ठान निरूपण लक्षणो योग:।'** अर्थात् मोक्ष साधनों का अनुष्ठान करने के लिए चेष्टा करना ही जिसका स्वरूप है उसका नाम योग है। तथा आगे तद्विष्या बुद्धि योग बुद्धि **'समेषा कर्मिणाम उचितमवति ते योगिन:** तद्विषया अर्थात् उस विषय की बुद्धियोग बुद्धि है वह जिन करने वालों के लिए उचित है अर्थात् जो उसके अधिकारी है, योगी है।

यहाँ पर अधिकारी शब्द से इंगित होता है कि प्रत्येक व्यक्ति योगी नहीं हो सकता है। उसके लिए पात्रता आवश्यक है, इसलिए स्थान–स्थान पर गीता में इस योग विद्या को ब्रह्मज्ञान, गुह्य विद्या, सनातन व सत्य बताकर पात्र व्यक्ति या साधक को ही बताने व सुनाने तक की ही बात कही गई है।

प्रभु श्री परमयोगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज के परमप्रिय व अनन्त योगेश्वर्य प्राप्त कर हर समय केवली मुद्रा में स्थित रहने वाले मुलखराज जी महाराज के शब्दों में 'विश्व प्रेम की प्राप्ति का साधन योग है।'

वैसे एक साधक की साधना के अभ्यास के अनुसार 'मन्त्र का अभ्यंतर (आंतरिक–अजपा) जापवद्ध कुम्भक करके आंतरिक (तेज) दृष्टि को एक क्षेत्र विशेष पर जमा कर स्थिर कर देना व उसे परम लयता प्रदान करके शरीराभास समाप्त कर सोऽहम् पद में स्थिर हो जाना योग है।' यह क्रिया योग क्रिया है। लगातार की तन्मयता से जो शक्तियाँ प्राप्त हो वे योगी की शक्तियाँ या सिद्धियाँ हैं। संक्षिप्त में आत्मा–परमात्मा के रहस्ययुक्त ज्ञान को योग तथा जिस क्रिया से यह प्राप्त किया जाये उसे योग क्रिया कहते हैं।

आज जब विज्ञान का युग है तो सम्भव है कि आधुनिक विज्ञान वादी उपरोक्त योग की परिभाषाओं व शब्दावली से सहमत न हों तो उनके लिए इस तुच्छ साधक के अनुसार "The Yoga is spritual Science of human body and it's soul relations with all Almighty Parmatma" जिसका अर्थ है कि मानव पिण्ड (शरीर) एवं उसकी आत्मा का सर्वशक्तिशाली परमात्मा से सम्बन्ध का आध्यात्मिक विज्ञान ही योग है। पश्चिम के एक वैज्ञानिक दार्शनिक अलेन डे नील् की पुस्तक – **योगा दि मैथड ऑफ रिइन्टीग्रेशन** में "Meaning of the word Yoga, which means identification, identification with Divinity being realization" अर्थात् ईश्वर से

एकरूपता स्थापित करना। ईश्वर से एकरूपता का अर्थ है साक्षात्कार। भारतवर्ष के योग के बारे में आगे कहते हैं कि "Yoga is guardian of eternal law, yoga is guardian of knowledge" अर्थात् योग ही सनातन नियमों का संरक्षक व योग ही ज्ञान का संरक्षक है।

योग के साधक की क्षमता एवं स्थिति के अनुसार दो प्रकार है -

(1) **सम्प्रज्ञात योग** (साकार–सगुण)

(2) **असम्प्रज्ञात योग** (निराकार–निर्गुण)

योग प्रारम्भ में अधिकांशतया सम्प्रज्ञात से शुरू होकर धीरे-धीरे अभ्यास के बल पर असम्प्रज्ञात (निर्बीज–निराकार) में चला जाता है। क्रियात्मक दृष्टि से योग के 40 से ऊपर तक प्रकार हो सकते है, परन्तु मुख्यतया भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, हठयोग, लययोग, जप योग, सहज योग, राज योग, ध्यान योग आदि। परन्तु ध्यान सभी का मूल है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने योग को निष्ठा के आधार पर दो प्रकार का ही (1) सांख्य योग (ज्ञान), (2) कर्मयोग ही कहा है। परन्तु दोनों का फल एक ही बताया है। महर्षि पतंजलि ने योग को आठ अंगों 'यम नियम–संयम–आसन–प्रत्याहार–धारणा ध्यान समाधि अष्टाङ्गानि' कहा है। श्री शंकर स्वरूप गुरु गोरखनाथ योग के छः अंग ही मानते है और यम–नियम को योग का अंग न मानते हुए गोरक्ष संहिता में इनका इस प्रकार उल्लेख करते है -

आसन प्राण संरोध प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यान समाधिरेतरनि योगांगानि बदतिषट।।

■■■

मानसिक संतुलन

मानसिक विश्राम के बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मन का अनुगामी होता है। मन में संकल्प उठता है इसके बाद ही शरीर द्वारा क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्त में पवित्र संकल्प या विचार आते हैं और अशुद्ध चित्त में बुरे संकल्प या विचार आते हैं। मन शरीर रूपी यन्त्र का संचालक है। मन या चित्त को शुद्ध रखने पर वही सही मार्ग पर चलेगा। इसलिए शरीर शुद्धि की अपेक्षा चित्त शुद्धि का महत्व अधिक है। चित्त शुद्धि के बाद शारीरिक स्वास्थ्य का सुधार स्वतः स्वाभाविक रूप से हो जायेगा।

चित्त को शान्त एवं प्रसन्न रखने की दृष्टि से मानसिक आहार के रूप में हमें अपने पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शुद्धि करनी होगी। कान से अच्छी बातें सुनें, भजन सुनें, आँख के द्वारा भी महान पुरुषों की जीवनी पढ़े, सत्पुरुष का अवलोकन करें, मन में अच्छे विचारों को स्थान दें तथा बुरे विचारों त्यागें। तभी चित्त शुद्धि की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी।

नववर्ष 2007 मंगलमय हो !

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

नये वर्ष में आपकी हो मनीषा

काल के कलेवर में गत वर्ष आत्मसात,
हो गया नवीन वर्ष साथ ले आया है।
अर्द्धमात्र क्षण एक का भी व्यर्थ जाये ना,
लेकर सन्देश उपदेश देने आया है।
ईश्वर भी सहाय तब बनकर आते जब,
सृष्टि में मनुज होता पहले यत्नशील है।
माँगने में लज्जा क्यों हो सर्वसमर्थ से,
देंगे वही आपको जो आपका अभीष्ट है।।

वर्षे नवीने मनसेप्सितं स्यात्

लयंगतः कालकलेवरेऽस्मिन्, भुक्तोऽपि वर्षः समुपेत्यं नूत्नम्।
वृथाव्यतीयेन्न क्षणार्धमस्य, यत्नो भवद्भिःकरणीय एषः।।
लोकोलिरेषा भगवान् सहायः तेषां कृते यत्नमानाः स्वयं ये।
लज्जा कथं प्रार्थ्यमानाय प्रभवे, ददातु भवते भवताममीप्सितम्।।

"May the New Year come blessing your own longing"

The Embodied Time absorbing the year frash comes along with a New
Let not a moment's half go waste needs to be gone through
Help comes from God for such as initiate ownself, the maxim says,
Why should then I hesitate to beg the Lord for your longing during the coming days.

योग साधना

डॉ. ऋषिराम शर्मा, वाराणसी

योग साधना भी आध्यात्मिक सिद्धि का महत्वपूर्ण अवयव है। जगदात्मा परमात्मा श्रीकृष्ण ने एक रहस्योद्घाटन किया कि –

इदं शरीरं तु कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तद् ज्ञानं मतं मम।।

अर्थात् नाम रूप वाले सभी शरीर क्षेत्र कहलाते हैं और उन्हें जो जानता है यानि उनमें जो ज्ञानत्व तथा चैतन्यता देता है, वह क्षेत्रज्ञ है। यही परमसत्य है कि परमात्मा ही वह क्षेत्रज्ञ है तथा क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग का ज्ञान ही परमात्मा का ज्ञान है। इस संयोग को ही उपनिषद में हृदय-ग्रन्थि कहा गया है –

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् हृदय-ग्रन्थि का भेदन, समस्त संशयों का छेदन तथा सभी कर्माशयों का नाश परमात्मा के साक्षात्कार से स्वतः हो जाता है। परन्तु यह कैसे सम्भव होगा? इस पर महर्षि पतंजलि कहते हैं कि –

'तस्य हेतुरविद्या', 'तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्'

अर्थात् क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग का कारण है अविद्या। अतः अविद्या का नाश होते ही संयोग का भी नाश हो जाता है और संयोग का नाश होने पर दृष्टारूप परमात्मा अपने कैवल्य स्वरूप यानि परात्पर विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप में प्रगट हो जाता है।

अविद्या के नाश के लिए ही साधन योग की आवश्यकता होती है। साधन योग में सगुण तथा साकारस्वरूप परमात्मा अथवा परमात्मा के स्वरूप में लीन सद्गुरु की विशेष आवश्यकता होती है। अपनी-अपनी रुचि, पूर्व के संस्कार तथा योग्यता के अनुकूल साधन-योग के भी कई विभाग हैं वह विभाग हैं – (1) **अष्टांगयोग** (2) **हठयोग** (3) **भक्तियोग** (4) **कर्मयोग**। इनमें हठयोग का साधन सद्गुरु की सान्निध्य में पूर्णरूपेण अनुकूल शरीर में सम्भव है, क्योंकि इसमें प्रमुखतः प्राणवायु पर विजय प्राप्त करना होता है। और प्राणवायु शरीररूपी जटिल जंगल में स्वतन्त्र भ्रमणकारी शेर के समान है जिसे वश में करना खतरों भरा है। शेष तीन योगसाधन के विषय में स्वयं जगदात्मा कृष्ण ने योग्यता की आवश्यकता बताई है कि –

मयि मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवस्यसि मय्येव अतः ऊर्ध्वं न संशयः।।
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोति मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।
अभ्यासे अपि असमर्थोऽसि मत्कर्म परमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि।।
अथैतदपि अशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगं आश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।

अर्थात यदि तुझमे सामर्थ्य है तो अष्टांगयोग के द्वारा समाधि मे प्रवेश कर अपने मन की समस्त वृत्तियों की मेरे परमात्मस्वरूप रूपी अग्नि मे आहुति दे दे तथा अपनी बुद्धि (Consciousnness) को मेरे स्वरूप मे लीन कर दे, यानि अपनी स्वरूप-शून्यता कर मुझ सर्वव्यापक परमात्मा के साथ एकात्मता कर ले। यदि ऐसा न कर सके तो इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अष्टांगयोग का अभ्यास कर। यदि ध्यान तथा समाधि का अभ्यास करने मे अपने को असमर्थ पाता है तो भक्तियोग का आश्रय ले। भक्तियोग मे सभी सांसारिक बन्धनों को तोड़कर अपने चित्त को मेरी सेवा (Krishna Consciousness) मे लगा दे। मन तथा बुद्धि मे परमात्मा की छवि तथा परमात्मा की लीलाओं के अतिरिक्त कोई अन्य वृत्ति उदित ही न हो, ऐसा कर पाने मे भी यदि तुम समर्थ नही हो तो कर्मयोग का आश्रय लो और यत्नपूर्वक कर्मफल की वृत्ति का पूर्णरूपेण नाश करो। अतः हम सर्वप्रथम 'कर्मयोग' को समझाने का प्रयास करते है।

कर्मयोग

कर्मयोग संसार मे रहते हुए तथा सांसारिक कार्य करते हुए कैसे योग-साधना की जा सकती है, इस पर भगवान कृष्ण समझाते है कि –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
सः संन्यासी च योगी च न निरग्निः न चाक्रियः।।
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मसु अनुसज्जते।
सर्वसंकल्पसन्यासी योगारूढः तदोच्यते।।

अर्थात् कर्मफल प्राप्त करने की इच्छा को त्यागकर केवल कर्तव्य बुद्धि से जो अपना नियत कर्म करता है, वही सन्यासी है, वही योगी है, न कि कर्म से सन्यास लेने वाले या अग्नि का प्रयोग न करने का व्रत धारण करने वाले। वास्तव में जिसे योगसिद्धि प्राप्त करनी है उसे तो योगाभ्यास रूपी कर्म करना ही है। योगी हो जाने पर वह अपने शान्तस्वभाव मे समाधिस्थ हो जाता है। जब इन्द्रियों के विषय भोगों मे तथा उन्हे प्राप्त करने के उद्देश्य से कर्म करने मे मन तनिक भी आसक्त तथा आकर्षित नही होता तथा सभी संकल्पों का परित्याग कर देता है तभी योग सिद्धि प्राप्त होती है। यही कर्मयोग की साधना है। उपनिषदों मे जीवात्मा को माया के आवरण से ढंका हुआ परमात्मा ही माना है, क्योंकि –

स वा एष महानजः आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदयन्तर्ज्योतिः पुरुषः। (बृह 4/4/17)

अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि। (छान्द 6/3/2)

शारीरः आत्मा प्राज्ञेन आत्मना अन्वारूढः। (बृह 4/3/35)

एषो अणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणाः पचधा संविवेश। (मुण्ड 3/1/9)

अर्थात् परमात्मा ही जीवात्मा के रूप में शरीर में प्रवेश कर नामरूप से प्रकाशित हो रहा है। वस्तुतः जो प्राणों में ज्ञाता, द्रष्टा, श्रोता या मन्ता के रूप में आत्मा है, वह महान, अजन्मा तथा हृदय में ज्योतिस्वरूप परमात्मा है। वह अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु सर्वव्यापी परमात्मा प्राणों में माया से आवृत है उसे माया के आवरण को योग साधना द्वारा साफ कर चित्त के माध्यम से जाना जा सकता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर्मयोग का विधान किया है कि

सदा विनियतं चित्तमात्मन्येव तिष्ठिति।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्त इत्युच्यते तदा।।
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति।।
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।।
तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्
संकल्पप्रभवान् कामान् त्यक्त्वा सर्वान् अशेषतः।
मनसेन्द्रियग्राम विनियम्य समन्ततः।।
शनैः शनैः उपरमेत् बुद्धया धृतिग्रहितया।
आत्मस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलं अस्थिरम्।
ततो ततो नियम्यैतत् आत्मन्येव वशं नयेत्।।
प्रशान्तमनसं हि एनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैतिशान्तरजसं ब्रह्मभूतं अकल्मषम्।।
युजन्तेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् जब विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास के द्वारा चंचल मन को बुद्धि के पूर्ण नियन्त्रण में कर लिया जाता है, ताकि वह विषय भोगों का चिन्तन त्यागकर आत्मा में स्थिर हो जाता है। यहाँ तक कि किसी भी प्रकार की कामना या उसके लिए संकल्प से निरासक्त रहता है, तब वह युक्त कर्मयोगी कहलाता है। इस प्रकार कर्मयोग की साधना के फलस्वरूप निरुद्ध हुआ चित्त शुद्ध सतोगुण के प्रकाश में स्फटिक मणि के समान विकार रहित दर्पण की तरह हो जाता है। तब दृष्टा उसमें केवल

अपने शुद्ध परमात्मस्वरूप के दर्शन करता है, जिसे आत्मसाक्षात्कार कहते हैं। उस स्थिति में आत्मा अपने परमानन्द का अनुभव करती है, क्योंकि उससे पूर्व तो – **एषो एव अस्य परमानन्द: एतस्यैव आनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।** (बृह 4/33/2) अर्थात् यह जो परमात्मा का परमानन्द है, इसी की अंशमात्र में सभी जीवात्मायें सुख का अनुभव करती हैं।

इसी स्थिति को दु:खों की नितान्त अभाव–अवस्था तथा योगस्थिति कहा जाता है। अत: सभी संकल्पों से उत्पन्न होने वाली कामनाओं का त्याग कर तथा वशीभूत मन के द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् सात्विक धृति धारण करने वाली बुद्धि शनै: शनै: मन को आत्म तत्व में लीन कर कुछ भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। यदि चंचल मन कहीं चिन्तन करने को उद्यत हो तो उसे वहाँ से तुरन्त हटाकर पुन: आत्मस्थ कर लेना चाहिये। इस तरह जब रजोगुण तथा तमोगुण का प्रवाह पूर्णरूपेण समाप्त हो जाय तब अपने निर्मल परमात्मस्वरूप में रमण करना चाहिये। इस प्रकार कर्मयोग की सिद्धि प्राप्त कर योगी अपने ब्रह्मस्वरूप का असीमित परमानन्द पा जाता है।

भजन

गुरुवर तुम्हीं बताओ किसकी शरण में जायें।
यह पाप पुँज लेकर किसको व्यथा सुनायें।।
तन नाव बहुत जर्जर नदिया में बाढ़ भारी।
चकरा रही भँवर में आया शरण तिहारी।।
देरी अगर लगा दी निश्चित यह डूब जाये। गुरुवर...।

जन्मों से बोझ लेकर यह जीव भटकता है।
यह कामी और लोलुप पापों में अटकता है।
हे सच्चे मार्ग दर्शक सन्मार्ग को दिखायें। गुरुवर...।

कंचन और कामिनी के फेरे में पड़के भगवन्।
सब नष्ट कर दिये हैं सद्बुद्धि और तनमन।
मन, बुद्धि शुद्ध करके मुझे काम से बचायें। गुरुवर...।

तुम 'चन्द्र' के हो 'मोहन' और 'राम' के हो 'लाला'।
तुम ही हो मेरे रक्षक तुमने ही मुझको पाला।
'त्रिभुवन' पर हाथ रखकर भव दु:ख से बचायें। गुरुवर...।

त्रिभुवन नाथ मिश्र, लखनऊ

योग आध्यात्म का सप्त दिवसीय कार्यक्रम

—: **सन्तोष शर्मा**, गंगापुर सिटी :—

हमारे दादा गुरुदेव परमप्रभु श्री रामलाल जी महाराज व योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणाकृपा से हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी ध्यान योग साधना शिविर का आयोजन गंगापुर सिटी साधक मण्डल के तत्वावधान में दिनांक 27 दिसम्बर 2006 से 2 जनवरी 2007 तक सम्पन्न हुआ। सिद्धगुफा सवाई से पधारे आचार्य श्री रामलाल जी महाराज की परम तपोमयी वाणी से योगपरक व्याख्यानों से इस ध्यान योग शिविर में सारा वातावरण योगमय बना रहा। जिसका सभी उपस्थित गुरुभाई-बहिनों ने लाभ उठाया।

इस सप्त दिवसीय ध्यान योग शिविर में प्रातः 5 से 6 बजे तक ध्यानाभ्यास, इसके पश्चात् 6 से 7.30 तक योगासन, 8 बजे से श्री प्रभुजी की आरती व गीता पाठ, व्याख्यान, शाम को 3 बजे से 6 बजे तक संकीर्तन, 7 बजे से सायंकालीन आरती। तदुपरान्त भजन–कीर्तन तथा 10 बजे तक योग सिद्धान्तों पर प्रवचन का कार्यक्रम चलता था। यह सारा वातावरण गुरुभक्ति व श्री प्रभुजी की करुणाकृपा से ओतप्रोत रहा।

इस योगमय वातावरण में सभी साधक उत्साहित व आह्लादित होते रहे। संध्याकालीन भजनों में बनारस से पधारे भाई श्री प्रदीप जी, राघवेन्द्र जी व उनके साथ आये गुरु भक्तों ने प्रभुजी की भक्ति से ओतप्रोत भावपूर्ण भजन सुनाकर सारे भक्त समुदाय को रोमांचित कर दिया।

सिद्धगुफा सवाई से पधारे श्री रघुराज जी जो कि गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के लाडले शिष्य रहे है, ने भी श्री प्रभुजी का गुणानुवाद करते हुए अत्यंत ही मधुर भजनों का पान सभी श्रोताओं को करवाया। जिससे सारा वातावरण योगमय हो गया। गुरुभक्ति की भावधारा बहती रही। सवाई से ही पधारे श्री विनोद नादान ने भी अत्यंत मधुर वाणी में अपने भजनों का साधकों को श्रवण कराया।

योग पर व्याख्यान करते हुए श्री रामलाल जी महाराज ने बताया कि योग केवल सुनने का विषय नहीं है, यह तो स्वयं के करने का विषय है। पढ़ने या सुनने मात्र से कोई कोई योग को जान ही नहीं सकता। क्योंकि योग तो स्वयं के करने का विषय है। योग को जानने के लिए साधन की व योग्य गुरु का सान्निध्य होना अत्यंत आवश्यक है। गीता के विभिन्न अध्यायों का उद्धरण देते हुए आचार्यश्री ने बार-बार एक ही बात बताई कि हे अर्जुन तुम सभी कर्म फलों का त्याग करके योगयुक्त हो जाओ। योग से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। तुम अपने मन और बुद्धि को मुझ में लगाओ, ताकि तुम्हारा चित्त एकाग्र होकर मुझमें ही लय हो जाये। योग पूरी तरह मन का ही विषय है।

गुरुदेव के बताये अनुसार साधना करने से मंत्र जाप से चित्त एकाग्र होता है और शनै: शनै: मन की ताकत बढ़ती है। साधक के अन्दर प्रकाश प्रगट होता है। मन को कैसे वश में करना चाहिये? इसके विभिन्न उपाय बतलाते हुए आचार्यश्री ने कहा कि जिसने अपने मन को वश में करना सीख लिया वह धीरे–धीरे अन्तर्जगत की ओर प्रवेश करने लगता है। उसकी निरंतर आध्यात्मिक उन्नति होती है। ध्यानयोग के विषय में बोलते हुए उन्होंने कहा कि जब साधक ध्यानावस्था को प्राप्त करता है

तो उसके अन्दर अपने इष्ट के दर्शन होने लगते हैं तथा संसार के बड़े से बड़े कष्टों का और दुःखों का निवारण स्वतः होने लगता है। इस तरह ध्यान की विभिन्न स्थितियों व समाधि और समाधि के भेदों का वर्णन उन्होंने सविस्तार किया।

योग की महत्ता बतलाते हुए श्री आचार्यजी ने कहा कि योग ही हमारे जीवन का परम लक्ष्य है। हमें उसे प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिये।

यह सप्त दिवसीय कार्यक्रम समाधि स्थल नृसिंह कालोनी 'योग आश्रम' गंगापुर सिटी पर आयोजित किया गया। जिसमें दूर–दूर से कई राज्यों से पधारे गुरुभाई–बहिनों ने अपनी गुरुभक्ति व योग जिज्ञासु होने का परिचय दिया। श्री सिद्धगुफा, सवाई से पधारे ब्रह्मचारी रघुराज जी, तिवारीजी, योगेन्द्र जी व चंदा बहिन जी आदि की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय रही।

हरियाणा से भी बड़ी संख्या में गुरुभाई व बहिनों ने इस शिविर में पधारकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ायी। मण्डी (हिमाचल) से पधारे श्री हरिसिंह जी ने अपने गुरुदेव के संस्मरण उपस्थित जनों को सुनाये। इस कार्यक्रम में कानपुर, आगरा, लखनऊ, भोपाल, दतिया, दिल्ली, फरीदाबाद, गोरखपुर आदि स्थानों से गुरुभक्तों ने पधारकर इस कार्यक्रम को सुशोभित किया।

साधक मण्डल द्वारा आगन्तुकों के निमित्त बहुत सुन्दर व्यवस्था की गयी थी। सात दिनों तक निरंतर भण्डारे की व्यवस्था उत्तम तरीके से जारी रही। एक जनवरी को गुरुदेव का पूजन व विशाल भण्डारे का आयोजन किया गया। जिसमें हजारों की संख्या में लोगों ने प्रसाद पाया। अपने इस कार्यक्रम का उद्देश्य यही रहता है कि सभी लोग अपने जीवन में योग की महत्ता को समझें। उसे अंगीकार करें तथा योग मार्ग की ओर निरंतर प्रवृत्त रहें।

अपने सद्गुरुदेव जी के प्रभामण्डल से आकृष्ट होकर अनेक सरकारी और गैर सरकारी हस्तियाँ भी कार्यक्रम में पधारीं। श्रीप्रभुजी कैसे अपने संस्कारी बच्चों को अपने पास खींच लेते हैं, इस सप्तदिवसीय शिविर में यह सब देखने को मिला। इस प्रकार यह सम्पूर्ण कार्यक्रम गुरुभक्ति और प्रभुजी की कृपाओं से ओतप्रोत रहा तथा दिनांक 2 जनवरी 2007 को हर्षोल्लास के साथ समाप्त हो गया।

■■■

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 61/18)

अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ (सवार) हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

श्री कृष्णगोपालजी को स्थूलदर्शन

प्रेषक : केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

हाथरस जनपद निवासी हमारे एक गुरुभाई का नाम श्री कृष्णगोपाल शर्मा जी है। जन्मजात कुलीन ब्राह्मण है। हाथरस जनपद के नवीपुरकला ग्राम के निवासी है। आपकी धर्मपरायणा पत्नी का नाम श्रीमती सरोज शर्मा है। आपकी तीन संताने है। पहली पुत्री का नाम गिरिजा शर्मा तथा दूसरी पुत्री का नाम सिन्धुजा शर्मा है। दोनों बच्चियों की शादी हो चुकी है तथा वे अपने पतिदेव एवं उनके पारिवारिक जनों के साथ सानन्द जीवनयापन कर रही हैं। श्री शर्माजी की तृतीय संतान पुत्र है और उसका नाम श्री आशुतोष शर्मा है। श्री कृष्णगोपाल शर्मा जी ने एल.एल.बी की परीक्षा के बाद वकालत का पेशा अपनाया एवं यही इनकी गृहस्थी का मुख्य पेशा है।

योग प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्धगुफा, सवाँई से सम्बन्धित प्रत्येक साधक इस तथ्य से अवगत है कि हमारे श्रीगुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने 25 जून सन् 1999 को अपना लीलावसान किया था। अन्तरजगत में प्रवेश पाने वाले आदरणीय साधकों को छोड़कर बाकी साधकों को दुविधा का शिकार होना पड़ता है। कभी- कभी जब श्री प्रभुकृपा होती है तो सोचते है कि श्री गुरुदेव जी महाराज आज भी है और कभी जब काफी दिनों तक कोई कृपा नहीं होती तो उनका मन सोचने को विवश हो जाता है कि आखिर हमारी आर्तपुकार श्री गुरुदेव भगवान को सुनाई क्यों नहीं देती। ऐसी स्थिति में साधक यह सोचकर चिन्तित रहता है कि यदि आज श्री गुरुदेव स्थूल रूप से विराजमान रहते तो हमको कष्ट नहीं उठाना पड़ता। कारण यह है कि गुरुदेव भगवान के स्थूल शरीर से हम गुरुभाई-बहिनों के अपने अनेक प्रकार के लौकिक एवं पारलौकिक कार्य हुए है। अब इस समय स्थूल शरीर उपलब्ध नहीं है, अतः कष्ट तो यह है ही। परन्तु उदास या निराश होने की आवश्यकता नहीं है। हमने अपने गुरुभाई-बहिनों से, जिनके अनुभव बहुधा सत्य ही होते हैं, ऐसा बराबर सुनता रहता हूँ कि आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज अपने स्थूल शरीर से जितनी कृपा करते थे, उसके कई हजार गुणा की गति से इस समय कृपा वर्षा कर रहे हैं। ऐसा प्रायः सुनने को मिलता रहता है कि हमारे आराध्यदेव स्थूल चिन्मय शरीर से प्रगट हुए, साधक-शिष्य-जिज्ञासु का अभीष्ट कार्य किये एवं उसके देखते-देखते फिर अन्तर्ध्यान हो गये। अतः धैर्य एवं उत्साह के साथ अपनी साधना अनवरत करते रहना चाहिये। वे कृपासागर एवं दयासागर नाम से सम्बोधित किये जाते हैं, अतः कृपा तो अवश्य ही करेंगे। ऐसा अनुभवी योगी साधकों का मत है।

हमारे गुरुभाई श्री कृष्णगोपाल शर्मा एडवोकेट आराध्यदेव की लीलास्थली श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम पर रुद्रमहायज्ञ के समय, जब श्रीगुरुदेव जी महाराज सशरीर विराजमान थे, अनुष्ठान कर चुके है। आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के लीलावसान के बाद, इनके मन में जब भी श्री सवाँईधाम पर अनुष्ठान करने का विचार प्रबल वेग पकड़ता है, इनका प्रत्यक्षदर्शी पर तत्काल निश्चय कर देता कि अब तो गुरुदेव वहाँ नहीं रहे, अब श्री सिद्धगुफा पर अनुष्ठान करने का विशेष लाभ ही क्या है? मन की इसी डावाडोल स्थिति में इन पर गुरुदेव की करुणाकृपा हुयी एवं फिर

उनकी सोचने की दिशा बदल गयी। भाई श्री कृष्णगोपाल शर्माजी के चिन्तन मे आया कि श्री गुरुदेव भगवान अपने मुखारविन्द से बतलाते थे कि जिस स्थान पर कोई सिद्धपुरुष या योगी साधक निवास करता है, उस स्थान के अणु परमाणु विलक्षण हो जाते है तथा उस स्थान पर की गयी साधना अवश्य ही फलदायी होती है। यह विचार भी दृढ़ हो गये कि श्री गुरुदेव भगवान का स्थूल शरीर भले ही विराजमान नही है, परन्तु उनके चरणकमलो की धूलि से सवाँई धाम का सम्पूर्ण क्षेत्र परम पवित्र तपस्थली बन गया है, अतः हमे अनुष्ठान श्री सिद्धगुफा पर ही करना हर प्रकार से लाभप्रद रहेगा। सुधी साधको एवं पाठको को यह बताना समीचीन होगा कि इसके पूर्व का अनुष्ठान गुरुभाई श्री कृष्णगोपाल जी ने सन् 1989 मे श्री सिद्धगुफा के पीछे बने आश्रमवासी कमरो के ऊपर जो ध्यान कुटियाँ बनी है, उसी एक कुटी मे किया था।

इस वर्ष (आज से कुछ वर्ष पूर्व) ये श्री गुरुपूर्णिमा के एक दिन पूर्व योगप्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा पर पहुँच गये थे। इन्होंने आश्रम पर रात्रि निवास किया एवं सवाँई धाम पर होने वाले आरती पूजन मे सम्मिलित रहे। इनके मन मे बार-बार यह विचार आता रहा कि श्रीगुरुदेव भगवान दादा गुरुदेव महाप्रभु रामलाल जी महाराज की कितनी अगाध श्रद्धा एवं समर्पण के साथ श्री गुरुपूर्णिमा पर्व पर आरती एवं पूजन किया करते थे। वैसे यह तथ्य तो निर्विवाद रूप से सभी योगी साधको को मानना ही पड़ेगा कि हमारे आराध्यदेव जी के समान गुरुभक्त मिलना असम्भव सा ही है। श्री गुरुपूर्णिमा की करीब-करीब पूरी रात इन्होंने गुरुमंत्र जप का स्वाध्याय किया एवं मन मे यह विचार आते रहे कि हे गुरुदेव मेरे मन मे यह भाव स्थायी रूप से भर दो कि इस सवाँई धाम पर आप का निवास सदा रहता है। रात्रि का समय समाप्त हुआ एवं दूसरे दिन अर्थात गुरुपूर्णिमा के दिन दैनिक क्रिया से निवृत होकर ये अपार श्रद्धायुक्त मन से योगेश्वर द्वय (अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम योग-योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज) का आरती पूजन किये, उसके बाद सिद्ध सेवित गुफा मे जाकर रजप्रसाद ग्रहण किये एवं उसके बाद श्री सिद्धगुफा की प्रदक्षिणा की। तदन्तर अपने पूर्व अनुष्ठान की कोठरी (ध्यानकुटी) को देखने की नीयत से श्री सिद्धगुफा के पीछे, जो छत के कमरो मे जाने के लिए जीना बना है, की तरफ बढ़े। वे जब जीना (सीढ़ी) से मात्र चार-पाँच कदम की दूरी पर थे, इन्हे अनुष्ठान के वेष मे (आधी धोती पहने हुए तथा आधी धोती शरीर पर ओढ़े हुए तथा कमलवत चरणो मे खटपटी (चटाकी) पहने हुए) आराध्यदेव श्री गुरुदेव के स्थूल चिन्मय शरीर के दर्शन हुए। आराध्यदेव ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ इन पर दृष्टिपात किया एवं जीने पर तेजी से चढ़ना आरम्भ कर दिया। परमभाग्यशाली गुरुभाई श्री कृष्णगोपाल जी के मन मे आराध्यदेव के चरणकमलों को स्पर्श कर प्रणाम करने की लालसा जागी एवं ये आराध्यदेव जी के पीछे-पीछे तेजी से चलने लगे। आराध्यदेव जी जीने पर चलकर छत पर पहुँच गये, जहाँ दाहिनी तरफ ध्यानकुटिया बनी है। श्री गुरुदेव भगवान ने अपनी कृपादायिनी दृष्टि से ध्यान कुटियो की तरफ देखा एवं फिर श्री गुरुभवन के ऊपर बने अपने एकान्तवास के कमरे मे प्रवेश कर गये। प्रणाम करने की नीयत से आराध्यदेव योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज का अनुसरण कर रहे भाई श्री कृष्णगोपाल शर्मा जी ने यह पूरा प्रसंग अपनी खुली आँखो से स्पष्ट देखा। इस प्रसंग को देखने के बाद वे पूर्णरूप से जान गये है कि योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज किसी न किसी परिवेश मे सवाँई धाम पर विराजमान ही है।

नवागन्तुक योग जिज्ञासु साधकों को " मानने व जानने " शब्दों का अन्तर स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है। मुक्तिदाता धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन एवं स्वाध्याय से आस्तिक प्राणियों में यह मानने का भाव बनता है कि ईश्वर एवं योगी सर्वशक्तिमान होते हैं। यह हुआ ईश्वर या योगी को सर्वशक्तिमान मानना। मानने के साथ यदि प्रमाण मिल जाता है तो मानना और प्रमाण दोनों मिलकर जानने या जानना बन जाता है। यह रहस्य एक योगपरक उदाहरण से बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

प्रसंग उस समय का है जब सन्त शिरोमणि रैदास (रविदास) इस धराधाम पर विराजमान थे। एक आध्यात्मिक सत्संग के समापन समारोह में आदरणीय श्री रैदास जी को आमन्त्रित किया गया था। आमंत्रण समारोह के समापन पर होने वाले भण्डारे में भोजन ग्रहण करने का था। आदरणीय श्री रैदास जी भण्डारे के उचित समय पर उपस्थित हो गये। भण्डारे में सन्त, महात्मा, जिज्ञासु, साधक एवं योगाभ्यासी महापुरुषों के अलावा क्षेत्रीय ब्राह्मण लोग भी आमन्त्रित थे। जब भोजन ग्रहण करने के लिए जमीन पर बिछे आसन पर लाईन में बैठने का समय आया तो लोगों ने कहा कि यदि रैदास हम लोगों की कतार में (साथ में) बैठेंगे तो हम लोग भोजन नहीं करेंगे। समारोह के संयोजक कुछ लोगों की ऐसी बात को सुनकर मुसीबत में पड़ गये कि अब क्या किया जाये? कर्ण परम्परा से यह बात आदरणीय रैदास जी के ज्ञान में आ गयी। उन्होंने आयोजकों से सप्रेम कहा कि परेशानी की कोई बात नहीं है। आप लोग आमन्त्रित लोगों को एक साथ बैठाकर भोजन कराइये, मैं दूसरी तरफ इनसे दूर बैठकर भोजन कर लूँगा। उसके बाद वैसा ही किया गया। आदरणीय भक्त रैदास जी को अन्य लोगों से करीब दस फीट की दूरी पर अलग बैठाकर भोजन कराया गया।

अन्तर्मुखी और अन्तर्जगत में प्रवेश वाले साधकों ने जब भोग लगाने के लिए परमेश्वर का आह्वान किया, तो सबने अनुभव किया कि आदरणीय भक्त रैदास जी उनकी बगल में बैठे हुये हैं और उनका शरीर उनसे स्पर्श कर रहा है।

आराध्यदेव की कृपा से अन्तर्जगत में प्रवेश पाने वाले साधक इस तथ्य को मानते थे कि आदरणीय रैदास जी उस परमपिता को परम प्रिय है परन्तु आज भण्डारे में भोजन ग्रहण करते समय उनको प्रमाण मिल गया, अब उनका मानना – जानना में बदल गया। भोजनोपरान्त सबने, जिनको उपरोक्त अनुभव हुआ था, यह पूर्ण रूपेण जान लिया कि भक्त रैदास की आध्यात्मिक स्थिति क्या है? साथ ही सभी अनुभव युक्त साधकों ने भक्त रैदास जी के भोजन ग्रहण करने के उपरोक्त प्रसंग में हुए अपमान के लिए हाथ जोड़कर उनसे क्षमा याचना की।

महाभारत के युद्ध में भी कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले जगदात्मा योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी द्वारा बार–बार समझाने पर भी महात्मा अर्जुन केवल यह मानते रहे की यह जो कुछ कह रहे है कि मैं ही हूँ, वह मानने लायक तो है परन्तु इसे मैंने कैसे जानूँ। योगेश्वर श्री कृष्ण ने जब महात्मा अर्जुन को अपने विराट स्वरूप का दर्शन कराया, तब वह योगेश्वर श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जान गया। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जानकर महात्मा अर्जुन ने उनसे इस प्रकार क्षमा याचना की –

सखेति मत्वा, प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।

प्रणायाम से स्वास्थ्य-रक्षा

डॉ. नरेश झा

मानव जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्य प्राप्ति के लिए हमारे तप पूत ऋषि–महर्षियों ने अनेक उपाय शास्त्रों में निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायाम की साधना भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही नहीं अपितु शरीर की शुद्धि तथा आरोग्य–लाभपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए भी है। इसकी उपयोगिता तो इसी से सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातंजलि आदि के योग ग्रन्थों चिकित्सा ग्रन्थों तथा प्रायः समस्त पुराणों में अनेकत्र चर्चित है। श्रौत–स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में प्राणायाम–विधान की आवश्यकता होती है। क्योंकि दैनिक कृत्य–संध्या–वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदि में प्रथमतः प्राणायाम का ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजन के लिए ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीर की शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति भी होती है। अतः इस महिमामय शरीर–रक्षक प्राणायाम के विषय में जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानव का पुनीत एवं प्रथम कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदों के योग से बना है–प्राण और आयाम। इन दोनों पदों में दीर्घ सन्धि करने पर प्राणायाम शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्द का अर्थ है–अपने शरीर से उत्पन्न वायु और आयाम का अर्थ है–निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायु को रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणों में कहा गया है कि–

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्।।

अर्थात् प्राणवायु का निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातंजल योगदर्शन में इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है –

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन में स्थित होकर बाह्य वायु का आचमन – श्वास और कोष्ठागत वायु का निःसारण – प्रश्वास, इन दोनों का गति–विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायाम की सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षण के द्वारा कुंभक तो दोष नहीं है, किन्तु पूरक और रेचक में आये अतिव्याप्ति दोष के निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास–प्रश्वास रूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिये।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणों में इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओं में प्रथम का ही आयाम–निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओं का प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राण में ही हो। कहीं पाँचों में प्राथमिक दो प्राण–अपानवायु का आयाम और कहीं पाँचों वायुओं का एक स्थान में धारण प्राणायाम माना गया है।

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो दस प्रकार के वायु का क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसों का प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायाम का विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराण में केवल प्राण के ही आयाम से निर्दिष्ट है।

बौधायन धर्मसूत्र वृत्ति में श्वास-निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है। इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्दमार्कण्डेय पुराणों में प्राण-अपान-वायु का निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानों में प्राणायाम का लक्षण इस प्रकार है-

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।

अब आइये-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान-इन पाँच वायुओं के निरोध पर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्प में निर्दिष्ट है -

नासिकापुटमंगुल्या पंचभिर्वायुरोधनैः।
शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्।।

अर्थात् अंगुली से नासिका पुट को बंद कर पाँच वायु (प्राणादि) - के निरोध से धीरे-धीरे निःशब्द होने को प्राणायाम जानना चाहिये।

इन पाँच प्रधान वायुओं के अतिरिक्त वेदव्यास जी ने शिव और अग्निपुराण में शरीर संचालन हेतु पाँच और नवीन वायुओं का समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचों के अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय नामक पाँच वायु शरीर में विभिन्न कार्यों के लिए प्रवाहित होते हैं। इनमें धनंजय वायु शरीर में सर्वव्यापी है। इनका क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्दपुराण से भी होती है। वहाँ कहा गया है कि -

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।
गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते।।

अर्थात सब ओर विचरण करने वाले प्राणादि वायु का गुरु के द्वारा उपदिष्ट रीति से जो एकदेश में धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोगप्रदीपिकाकार ने कहा कि -

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायु निरोधयेत्।।

अर्थात् जब तक शरीर में प्राणादि वायु स्थित है, तभी तक जीव का जीवन है। प्राणवायु के निकल जाने पर मरण सुनिश्चित है, अतः वायु का निरोध करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में योगशास्त्र का उद्धरण देते हुए धर्म विज्ञान में कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीर की प्रधान शक्तियां होती है, वे ही संसार के रक्षक है, उन्हें वश में करने पर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते है। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार के होते हैं। इन प्राणों के ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम की उपयोगिता तथा उससे आरोग्य

शरीर की रक्षा के लिए जिस प्रकार अन्न की उपयोगिता है, शरीरस्थ रोग नाश के लिए जैसे

औषधियों का विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्यान्तर) रोगों के समूल नाश के लिए प्राणायाम का प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है –

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्॥

अर्थात् समुचित प्राणायाम द्वारा सभी रोगों का नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास से सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेष रूप से हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस) का फूलना, सिर, कान एवं नेत्र में वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशय की पुष्टि बृहन्नारदीय पुराण से भी होती है।

यथा –

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः॥

आशय यह है कि मतवाले हाथी के समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु) को अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे जीतना चाहिये, अन्यथा भयंकर महारोग होने की सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धति से तथा गुरु के द्वारा उपदिष्ट परम्परा से किये गये प्राणायामों से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

अतः प्राणायाम करने में प्राचीन परम्परा का पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्परा के पालन में स्थान और काल आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है –

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामं च साधयेत्॥

अर्थात् प्राणायाम साधना में उपयुक्त स्थान, काल, परमित आहार और नाड़ी शुद्धि (वात-पित्त-कफ) आवश्यक हैं।

रोग नाश के अतिरिक्त मानसिक सन्तुलन रखने में भी प्राणायाम का महान उपयोग होता है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से चित्त में एकाग्रता आती है और इसके लिए पातंजलोक्त 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' अर्थात् कोष्ठगत वायु का नासिका (नाक) के पुटों द्वारा विशेष प्रयत्न से प्रच्छर्दन-वमन, विधारण-विशेष रूप से धारण करके प्राणायाम करें। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्रीमद्भागवतादि मान्य ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन काल में प्राणायाम के बल से ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रि ने ऋक्षकुल पर्वत पर सौ वर्ष तक प्राणायाम के बल से केवल वायुपान करते हुए एक पैर पर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमद्भागवत् तथा घेरण्ड संहिता में कहा गया है –

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः।।

□ □ □

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी।।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायाम से आकाश गमन की शक्ति आती है, प्राणायाम से संतुलन ठीक रहता है, चित्त में आनन्द की प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकार से नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं , प्राणायाम के सेवन से शरीर में फेफड़े (फुप्फुस) की शक्ति बढ़ती है, रुधिर की शुद्धि होती है। समस्त नाड़ी चक्रों में चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायाम के सेवन से स्वस्थ एवं नीरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर मानव जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

■■■

संत की सेवा

गुरु गोविन्दसिंह ने एक दिन किसी शिष्य से एक गिलास पानी माँगा। एक धनी आदमी के लड़के ने चमकते गिलास में पानी दिया। वह युवक सुन्दर था, उसके हाथ साफ थे किन्तु गुरु ने पानी से भरा गिलास वापस कर दिया। युवक ने बड़ आश्चर्य से गुरु की ओर देखा। महान् सद्गुरु ने कहा – नवजवान ! तुम्हारा गिलास चमक रहा है, तुम्हारी मुखाकृति सुन्दर है, तुम्हारे हाथ भी साफ–स्वच्छ हैं, लेकिन ये अब तक संत की सेवा नहीं कर सके हैं। पहले संत की सेवा के द्वारा अपने हाथ पवित्र करो। तुम्हारे हाथ विनम्रता और स्वाभाविक दैन्य से ही पवित्र होंगे। अहंकार का त्याग करो, दीन–दुखियों की सेवा में पवित्र हृदय और निष्काम भाव से लग जाओ। इसके बाद तुम मुझे पानी दोगे तो मैं उसे बड़ी प्रसन्नता से पी लूँगा, गिलास वापस नहीं होगा।

स्वास्थ्य चर्चा

सर्वोपयोगी रुद्राक्ष

वैद्य हरिश्चन्द्र शर्मा

रुद्राक्ष वटादि वर्ग का एक मध्यम कद का वृक्ष होता है, जो विशेषकर वनों में होता है। इसके पत्ते कुछ गोल व छोटे होते हैं। फूल श्वेत, फल नीलाभ (गोल या अण्डाकार) जिसको रुद्राक्ष कहते हैं। यह बीज है, जिसे साफ करके पालिश किया जाता है। कहीं–कहीं रंग कर भी उपयोग में लाया जाता है। बीज के ऊपर का गूदा खट्टा होता है और इसका उपयोग अपस्मार में किया जाता है।

नेपाल, भूटान, बिहार, आसाम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और हिमालय की तलहटियों में विशेष रूप से पैदा होता है। हरिद्वार के दक्ष प्रजापति मन्दिर और कनखल के पारद शिवलिंग वाले मन्दिरों में इन वृक्षों के साक्षात् दर्शन किये जा सकते हैं।

रुद्राक्ष–अम्ल, उष्ण, वातनाशक, कफ निवारक, शिर की पीड़ा को दूर करने वाला, भूतबाधा, ग्रहबाधा निवारक है। जिस प्रकार हैजा के मौसम में ताँबे के सिक्के माला में गूँथकर धारण करने से हैजा का भय नहीं रहता, पीतल की माला धारण करने से प्लेग के प्रकोप का भय नहीं रहता, उसी प्रकार योगी, मुनियों व शास्त्रों की धारणा है कि रुद्राक्ष की माला धारण करने से मनुष्य शरीर में प्राण तत्व अर्थात् विद्युत शक्ति नियमित हो जाती है। इसके धारण करने वाले को उन्माद, अपस्मार, भूत बाधा, ग्रह बाधा नहीं सताती तथा रक्त का दबाव नियमित होकर मानसिक रोग मिट जाते हैं।

रुद्राक्ष के औषधीय प्रयोग

1. जब बच्चे की छाती में कफ बहुत चिपक गया हो, सभी प्रयत्न असफल रहे, रोगी के बचने की आशा न रहे तब रुद्राक्ष के 2–3 दाने बारीक पीसकर शहद से 5–5 मिनट के अन्तर से चटाकर देखें। माता का दूध भी पिलाते रहें। वमन के साथ सब कफ बाहर निकल जायेगा। बालक को आराम आ जायेगा।

2. रुद्राक्ष के दाने को गौ के दूध में पकाकर प्रातःकाल खाली पेट सेवन कराने से चेचक का प्रकोप शीघ्र मिट जाता है।

3. असली रुद्राक्ष के 2–4 दाने 2 घूँट पानी में रात को डाल दें। प्रातः खाली पेट 60 से 90 दिन तक पीने से उच्च रक्तचाप नहीं रहता है। रुद्राक्ष की माला बनाकर पहनें, जो हृदय से स्पर्श होती रहे तो उच्च रक्तचाप रोग से मुक्ति मिल जाती है। रक्तचाप कम या अधिक होने पर घी और नमक बिल्कुल छोड़ दें, हल्का भोजन लें। भुजाओं यंत्र की भाँति बाँध लें।

रुद्राक्ष का पौराणिक महत्त्व

रुद्राक्ष शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। जिसके दर्शन और पूजा से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं और दोनों लोकों में मनुष्य अति आनन्द प्राप्त करता है। कहते हैं कि शिवजी की तपस्या से उनके आँसू वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गये, जिसे 'रुद्राक्ष' कहते हैं और उनकी कृपा से भक्तों को शिव प्राप्त होने लगे और धीरे–धीरे सभी स्थानों पर ये वृक्ष उत्पन्न होने लगे। अयोध्या, मथुरा, काशी, गौड़देश, हरिद्वार, सह्यागिरि में रुद्राक्ष अधिकता से उत्पन्न होने लगे।

चार वर्णों के अनुसार रुद्राक्ष भी चार रंगों के पाये जाते हैं। श्वेत वर्ण ब्राह्मण, रक्त

वर्ण–क्षत्रिय, पीत वर्ण–वैश्य और श्याम वर्ण रुद्राक्ष शूद्र वर्ण को धारण करने का वर्णन मिलता है। सब देवता, ऋषि–मुनियों एवं मनुष्यों को मद्यमांस का त्याग करने के उपरान्त ही रुद्राक्ष धारण करने की आज्ञा है। रुद्राक्ष असंख्य दुःखों को नष्ट करके अप्रमेय सुख की प्राप्ति कराता है।

आकारानुसार रुद्राक्ष के गुण

आँवले के आकार वाला रुद्राक्ष सर्वोत्तम होता है। बेर के फल बराबर मध्यम और छोटा रुद्राक्ष अधम माना जाता है किन्तु जो रुद्राक्ष घुंघची (चौटनी) के आकार वाला होता है वह सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करने वाला होता है। इसकी महिमा और धारण करने का फल अधिक बतलाया गया है।

जो रुद्राक्ष दृढ़, चिकना, काँटों से युक्त तथा मोटा होता है, सम्पूर्ण मनोरथ को प्रदान करता है। भक्तों को समस्त पापों से मुक्ति दिलाता है। जो रुद्राक्ष कीड़ों ने खा रखा हो, काँटों से रहित हो, कटा हुआ हो या छेद करते समय फट जाये या जो रुद्राक्ष का स्वरूप न रखता हो धारण नहीं करना चाहिये। स्वयं वृक्ष से लाया गया रुद्राक्ष ही सर्वोत्तम होता है, दूसरे के द्वारा लाया गया मध्यम माना गया है। स्वयं लाकर रुद्राक्ष धारण करने वाले व्यक्ति को भगवान सदा शिव का रूप ही मानना चाहिये।

रुद्राक्ष मंत्रोच्चार करके ही धारण करना चाहिये जो विद्वान ऐसा नहीं करते वे नरकगामी कहलाये हैं, लेकिन अज्ञानी यदि बिना मंत्रोच्चार के ही रुद्राक्ष धारण करता है तो उसे कोई पाप नहीं लगता है। रुद्राक्ष धारण करने वालों को भूतबाधी नहीं सताती है, उसे देखकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। जो मनुष्य रुद्राक्ष की माला से मंत्र जाप करता है उसे 10 गुना फल प्राप्त होता है। अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता। रुद्राक्ष को सभी वर्णों के तथा सभी आश्रमों के मनुष्यों को धारण करने का अधिकार है। इसके लिए श्रद्धा एवं विश्वास होना परमावश्यक है। रुद्राक्ष हर समय धारण करना चाहिये। जिनके ललाट पर त्रिपुण्ड, मस्तक पर रुद्राक्ष और मुख में पंचाक्षर मंत्र है वह पूजनीय होता है।

रुद्राक्ष के प्रकार

रुद्राक्ष एक से चौदहमुखी तक होते हैं। जिनका महत्व, गुण और धारण करने की विधि तथा उसके लाभ शास्त्रों में जो वर्णित किये गये हैं, वे इस प्रकार हैं –

1. एकमुखी रुद्राक्ष : एकमुखी रुद्राक्ष भगवान सदाशिव का स्वरूप है जिसके दर्शन मात्र से ही ब्रह्महत्या जैसे पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। इसके विधिवत पूजन से घर में स्थायी लक्ष्मी का वास होता है। व्यक्ति चिंतामुक्त होकर निश्चिंत जीवन व्यतीत करता है। एकमुखी रुद्राक्ष को सोमवार के दिन प्रातःकाल पवित्र होकर अंग न्यासादि करके **'ओम् ऐं ह्रं औं ऐं ऊं'** मंत्र का 108 बार जाप करके धारण करना चाहिये यह बड़ा दुर्लभ होता है। नकली न खरीदें वरना फल नहीं मिलेगा।

2. द्विमुखी रुद्राक्ष : देव देव नाम वाले दोमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से गौ हत्या जैसा पाप भी नष्ट हो जाता है। सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। मनुष्य धन–धान्य से पूर्ण होकर चिन्ताओं से मुक्त रहता है। इसे सोमवार व प्रातःकाल शिवरात्रि या महाशिवरात्रि को **'ओउम् ह्रीं श्रीं ह्रीं ऊं'** मंत्र का 108 बार जाप करके धारण करना चाहिये।

3. त्रिमुखी रुद्राक्ष : यह साक्षात अग्निस्वरूप होता है। यह स्त्री हत्या जैसे पापों का नाशक है। विद्याप्रदाता, शत्रुनाशक, पेट व्याधि तथा आत्महत्या जैसी अशुभ घटनाओं से रक्षा करता है। तीसरे

दिन आने वाला बुखार फिर कभी नही आता। धन तथा आयु की वृद्धि करता है। सोमवार के दिन यथाविधि शुद्ध होकर 'ओउम् रं हे ह्रीं हूँ औ' मंत्र का 108 बार जाप करके धारण करें।

4. **चतुर्मुखी रुद्राक्ष** : यह साक्षात् ब्रह्मा का स्वरुप होता है। इसे धारण करने वाला वेद शास्त्र का ज्ञाता, सर्वप्रिय, धनी व यशस्वी होता है। कभी किसी प्रकार की कमी नहीं रहती है। आत्महत्या का पाप तक मिट जाता है। आँखो मे तेज, वाणी मे मिठास, स्वस्थ शरीर एवं दूसरो को आकर्षित करने की अपूर्व शक्ति आ जाती है। सोमवार के दिन विधिपूर्वक शुद्ध होकर प्रातःकाल निम्न मंत्र का जाप करके गले मे धारण करें। यदि शर्म अनुभव हो तो जेब मे ही रख लें। प्रतिदिन एक बार मंत्र जाप अवश्य करें, 108 बार। मंत्र है – **ओउम् वां क्रां तां हां ईं।**

5. **पंचमुखी रुद्राक्ष** : यह कालाग्नि नाम से जाना जाता है। सब रुद्राक्षो मे इसे अधिक शुभ तथा दाता माना गया है। इसके धारण करने से यश, वैभव, सम्पन्नता, सुख–शान्ति तथा प्रतिष्ठा बढ़ती है। दूषित अभक्ष्यान्न सेवन का दोष एवं परस्त्री गमन का पाप नष्ट हो जाता है। पंचमुखी रुद्राक्ष को सोमवार के दिन प्रातःकाल यथाविधि शुद्ध होकर काले धागे मे गूँथकर '**ऊं हां क्रां वां हां**' या '**ओउम् ह्रीं नमः**' मन्त्र का 108 बार जाप करके गले मे धारण करें। प्रतिदिन 108 बार मंत्र जाप अवश्य करें।

6. **षट्मुखी रुद्राक्ष** : इसकी कार्तिकेय संज्ञा है, इसको स्कंद के समान जानना चाहिये। इसको धारण करने वाला शुभ लक्षणो से युक्त सद्‌गुणी व धैर्यवान होता है। सभी सम्मेलनो मे बोलने की अपूर्व शक्ति आ जाती है। पार्वती माता की विशेष कृपा बनी रहती है। सोमवार के दिन पवित्र हो यथाविधि अंग न्यास करके रुद्राक्ष को काले धागे मे गूँथ कर 108 बार निम्न मंत्र का जाप करके धारण करें तथा नित्य प्रातः 108 बार मंत्र जाप करता रहे। '**ओउम् ह्रीं श्रीं क्लीं सौं ऐं**' इस मंत्र से अभिमंत्रित कर लें तथा नित्य '**ओउम् ह्रीं हुं नमः**' का जाप किया करें।

7. **सप्तमुखी रुद्राक्ष** : इसका नाम अनन्त है, इसे महासेन भी कहा जाता है। इसे धारण करने वाला दरिद्री भी राजपद पाने मे सक्षम हो जाता है। उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है। सोमवार के दिन शुद्ध होकर प्रातः यथाविधि करन्यास अंगन्यास तथा ध्यान करके '**ऊं हं क्रीं ह्रीं सौं**' मंत्र का जाप करके काले धागे में गूँथ कर गले मे धारण करें और '**ओउम् हुँ नमः**' का नित्य प्रति शुद्ध होकर 108 बार पाठ करें। इसके धारण करने वाले को विष कष्ट नही देता, सुख शान्ति तथा लाभ प्राप्त होता रहता है, स्त्री वशीकरण, गुप्त धन तथा यशकीर्ति फैल जाती है। उत्तरोत्तर उन्नति करता है।

8. **अष्टमुखी रुद्राक्ष** : इसे साक्षात् **गणेश का अवतार** माना गया है। इसको धारण करने वाला आजीवन अपयश का मुख नही देखता है, उच्च शिक्षा ग्रहण करता है। आयु की वृद्धि होती है। सोमवार के दिन यथाविधि काले धागे मे गूँथकर न्यासादि करके 'ओउम् हां ग्रीं लं आं श्रीं' मंत्र को पहले दिन जपें। तत्पश्चात् प्रतिदिन उपरोक्त मंत्र अथवा '**ओउम् हुँ नमः**' का 108 बार जाप अवश्य करें।

9. **नवमुखी रुद्राक्ष** : यह '**भैरव**' नाम से प्रसिद्ध है। इसको धारण करने वाला भगवान सदाशिव को अत्यन्त प्रिय होने के कारण स्वर्ग मे इन्द्र के समान पूजा जाता है। मृत्युलोक मे धन–सम्पत्ति, ऐश्वर्य, मान–प्रतिष्ठा की कमी नहीं रहती है। महाशिवपुराण मे नवमुखी रुद्राक्ष को दुर्गा का स्वरुप बताया गया है और दायें हाथ मे धारण करने का निर्देश दिया गया है। जबकि अन्य ग्रन्थों मे

सोमवार के दिन भगवान शिव के चित्र के सामने यथाविधि पूजन करके काले धागे में गूँथकर गले में धारण करना चाहिये। **'ओउम् ह्रीं वं रं लं'** मंत्र का जाप पहले दिन करें और प्रतिदिन शुद्ध होकर शिवालय में अथवा घर पर ही शिव जी के चित्र के सम्मुख 108 बार उपर्युक्त मंत्र अथवा **'ओउम् ह्रीं हुं नमः'** का 108 बार पाठ अवश्य करें।

10. **दशमुखी रुद्राक्ष** : इसको साक्षात् **विष्णु भगवान** का रूप माना गया है। इसके धारण करने से युद्ध में विजय प्राप्त होती है। भूतप्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि बाधायें नहीं सताती। यह अत्यन्त कल्याणकारी और शक्तिशाली है। सम्पूर्ण कार्यों में सिद्धि दिलाने वाला है। प्रातः सोमवार के दिन स्नान करके भगवान के सम्मुख यथाविधि पूजन, न्यास आदि करके काले धागे में गूँथकर कंठ में धारण करना चाहिये। **'ओउम् श्रीं ह्रीं क्लीं व्रीं ऊं'** मंत्र का जाप करें।

11. **एकादशमुखी रुद्राक्ष** : यह **रुद्रस्वरूप** माना गया गया है। चन्द्रग्रहण में किये गये दान तथा वाजपेयी यज्ञ से भी हजार गुना पुण्य फल मिलता है। यश–वैभव तथा पर्याप्त प्रसिद्धि मिलती है। सोमवार को प्रातः स्नान करके भगवान के सामने पीढ़ा (चौकी) रखकर, उस पर आसन बिछाकर रुद्राक्ष को रखें। फिर परमेश्वर का ध्यान कर अनन्य भाव से रुद्राक्ष को नमस्कार कर यथाविधि न्यासादि करके पूजन व **'ओम् रुं मूं औं'** मंत्र का 108 बार जाप करके काले धागे में रुद्राक्ष को गूँथकर गले में धारण करें। अन्य दिन उपरोक्त या **'ओउम् ह्रीं हुं नमः'** मंत्र को प्रातःकाल नित्य 108 बार जाप करें।

12. **द्वादशमुखी रुद्राक्ष** : इसे सूर्य का स्वरूप माना गया है। प्रातः सोमवार के दिन सूर्योदय के समय नारायण को नमस्कार करके फिर रुद्राक्ष को हाथ में लेकर सूर्य की किरणों से स्नान करायें। तदुपरान्त घर के पवित्र स्थान में भगवान के समक्ष चौकी पर लाल वस्त्र कोरा बिछाकर उस पर रुद्राक्ष को रखें। लाल पुष्प, लाल चन्दन, गुड़, ताँबे के लोटे में जल लेकर यथाविधि अंग न्यासादि करके काले धागे में गूँथकर **'ओउम ह्रीं क्षौं घृणिः श्रीं'** मंत्रोच्चारण के साथ गले में धारण करें। अन्य दिन उपर्युक्त मंत्र अथवा **''ऊं ह्रौं श्रीं रीं नमः'** सूर्य के दर्शन करके केवल एक बार पढ़ें। श्री शिवमहापुराण के पृष्ठ 812 पर शिखा में इसे धारण करने का निर्देश किया है। इसके धारण करने से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। दोनों लोकों में सुख प्राप्त होता है। चोर, अग्नि, दरिद्रता तथा व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है। कुछ ही समय के अन्दर धन पुत्रादि से घर भर जाता है। जंगली–विषैले जीव–जन्तुओं से पूर्ण सुरक्षा मिलती है।

13. **त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष** : इसकी **इन्द्र** की संज्ञा मानी गयी है। इसके धारण करने से सम्पूर्ण मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। ऋद्धि सिद्धि प्राप्त होकर पापों से मुक्ति हो जाती है। सोमवार के दिन प्रातः पवित्र होकर भगवान के सामने चौकी पर कोरे वस्त्र को आसन पर बिछायें। फिर यथाविधि अंगन्यासादि करें। 108 बार **'ओउम् ईं यां आप औं'** मंत्र का जाप कर और रुद्राक्ष को काले धागे में गूँथ कर गले में धारण करें। नित्य प्रति भगवान का दर्शन और रुद्राक्ष का स्पर्श कर उपरोक्त मंत्र या **'ओउम् ह्रीं नमः'** का उच्चारण करें।

14. **चतुर्दश मुखी रुद्राक्ष** : इसको **हनुमान** जी का स्वरूप माना गया है। सोमवार को प्रातः स्नान कर भगवान के सामने चौकी पर आसन बिछा रुद्राक्ष को विराजमान करके नमस्कार करें। विधि पूर्वक पूजन करें। **'ओउम् हस्फें खफ्रें हस्रौं हस्फ्रें'** मन में जपें। अन्त में काले धागे में गूँथकर गले में धारण करें। अन्य दिन भगवान के सामने रुद्राक्ष का स्पर्श कर उपर्युक्त मंत्र या **'ओउम् नमः'** मंत्र का जाप करें। यह बलशाली हनुमान जी का प्रतीक होने से भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि तथा अन्य संकटों से रक्षा कर बल–साहस प्रदान करता है। सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

■■■

कौन है तू और क्यों आया है?

अशोक शुक्ला कानपुर

जीव जब जगत की यात्रा पर आया तो सत्य होते हुए भी उसकी दृष्टि सीमित हो गयी। सृष्टि असीमित और उसको पहचानने जानने में, उसके उपयोग में जीव की यात्रा पूरी हो गयी। पुन: उसी परमात्मा के पास एक अगली यात्रा के लिए चल दिये।

यह अगली यात्रा कहीं विराम नहीं, आराम नहीं, कोई सुबह नहीं, कोई शाम नहीं। उस परम सत्ता, परम करुणालय के सामने यात्रा पर आते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं आपको विस्मृत नहीं करूंगा और सदैव आपका ही स्मरण करता हुआ यात्रा के किसी भी मोड़ पर भूलूंगा नहीं। लेकिन जीव का पदार्पण जैसे ही जगत में हुआ प्रभु की त्रिगुणमयी वृत्ति रूपी बयार का स्पर्श जीव को हुआ और स्पर्श होते ही भूल गयीं वे सारी प्रतिज्ञायें और जिन तत्वों के सहयोग से उसको एकरूप, एकाकार मिला उसको जानने का प्रयास नहीं किया। आया इस प्रकृति में रमा रमाया तथा जिन तत्वों के संयोग से यह आकार मिला वह उसी में पुन: समाया। एक बार फिर जीव अपराधबोध की गठरी लिए वापस परमात्मा के सामने उपस्थित, एक और यात्रा के लिए। तो फिर क्यों आया, जब आया तो तूने अपने से प्रेम नहीं किया, फिर यहाँ कौन तुझसे प्रेम करता? और जब प्रेम ही नहीं किया तो अपने आपको जानता कैसे? जान ही नहीं पाये। अपने को तो तेरे आने का प्रयोजन ही क्या? बाहर तूने बहुत आयोजन किये, बहुत आयोजनों में गया। तुझको पता भी नहीं चला कि किस तरह कैसे-कैसे किसके द्वारा कितनी बार ठगा गया? मैं अन्दर तेरा इन्तजार करता रहा और तू द्वार पर ताला डालकर बाहर ही खड़ा रहा। न तू अन्दर आया, न अपने आप को ही जान पाया। मैं तो बेताब था, यह बताने के लिए कि तू मेरा है, मैं तेरा हूँ, लेकिन तू प्रतीक्षा करता रहा समय की, समय ने तेरी प्रतीक्षा नहीं की और फिर पूरा हुआ समय, शुरु हुई यात्रा फिर वापसी की।

जाने इस बार कहाँ जायेंगे, लौटकर फिर तेरी दुनियाँ में नहीं आयेंगे। अब की बार हमारी प्रभु किसी पावन घर में डालो प्रभो, जिस घर में **शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते** आते हैं। उनका सम्पर्क पाकर उनके सान्निध्य में रहकर आपको जान सकूँ। तेरा लक्ष्य को पहचान सकूँ, आने का समापन कर सकूँ और आप जो है वो ही हो सकूँ।

मेरे भाई! यह हम सबका परम सौभाग्य और उन परम करुणासागर की औहतुकी कृपा और आशीर्वाद है जो अकारण ही मिला है। ऐसा सुयोग जीवन में आये कई-कई जन्मों के संचित पुण्य कर्म हो जाने के बाद भी अगर सामर्थ्यवान पूर्ण सद्गुरु मिल जायें, जीवन में ऐसा गुलजार आ जाये और वो अपना लें। क्योंकि मुझमें ज्ञान, ध्यान, भक्तिभाव कुछ भी तो नहीं है। प्रेम करना भी नहीं आता। मैं तो बस सद्गुरु के हाथों बिकना जानता हूँ और वह भी बिना मोल के। क्योंकि हीरा बनाना उनका ही काम है।

अरे! मेरे आत्मीय जनो मेरी विनती सुनो और ऐसे सुकाल का उपयोग कर लो तथा सब भाँति केवल और केवल प्रभुजी के ही होकर रहो।

सद्गुरु कृपा से यह ज्ञान आया,
अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये।

दैवीय हाथ भयानक अज्ञात क्षेत्र में उड़ने में सहायता करता है

–दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर, अलीगढ़–

माँ चील ने छोटे बच्चे को घोंसला छोड़ने के लिए फुसलाने की कोशिश की, लेकिन छोटा बच्चा डरा हुआ था। अचानक ही, माँ अच्छी तरह से बच्चे के ऊपर छाई। मैंने अपनी साँस रोक ली क्योंकि मैं जानता था कि क्या आ रहा था? क्रिस्टोवेल ग्लोवेल पुनः स्मरण करता है 'छोटा साथी गहराई को देखते हुए घोंसले के किनारे पर खड़ा था, जिसने उड़ान भरने का साहस नहीं किया। पीछे तेज चीख हुई जिसने उस घड़ी की कहानी की तरह कठोर बना दिया। दूसरे ही क्षण माँ चील ने अपने पंजों का झपट्टा मारते हुए घोंसला नष्ट कर दिया और शाखाओं और अपना सहारा देते हुए हवा में उड़ गयी'। वह बच्चा अब उतरा रहा था, नीली हवा पर, स्वयं के बल पर उतरा रहा था और बच्चे ने बड़ी बहादुरी से जीवन के लिए पंख फड़फड़ाये। उसके ऊपर, उसके नीचे, उसके सहारे माँ चील अथक पंखों से उड़ती रही और कोमलता से पुकारती रही कि वह वहाँ थी। लेकिन गहराईयों का आश्चर्यजनक भय, नुकीली चीज चुभने का भय छोटे बच्चे को बना रहा, उसके पंखों की फड़फड़ाहट ज्यादा जंगली हो गयी, वह तीव्रतर गिरा अचानक। अधिकतम भय में था क्योंकि उसकी ताकत समाप्त हो गयी थी – उसने संतुलन खो दिया, अपना सिर हवा में नीचे किया। सब समाप्त हुआ, उसने अपने पंख पेड़ की शाखाओं में टुकड़े–टुकड़े होने के लिए सिकोड़े। तब चकाचौंध करने वाली रोशनी की तरह माँ चील बच्चे के नीचे आ गयी। उसके निराश कदमों ने माँ के चौड़े पंखों को स्पर्श किया। उसने अपने को सही किया, एक क्षण विश्राम किया, अपना सिर पाया, तब एक बन्दूक की गोली की तरह बच्चे के नीचे से हट गयी, बच्चे को अपने पंखों पर ही नीचे आने के लिए।

यह केवल एक ही क्षण का काम था। इसके पहले मैंने उन्हें बहुत नीचे पेड़ों में खो दिया और जब मैंने उन्हें अपने चश्मे से देखा, वह छोटा चील का बच्चा देवदार वृक्ष के ऊपरी बिन्दु पर था।

क्रिष्टावेल की कहानी में चील के विषय में पहले अपने बच्चे को उड़ने के लिए धक्का देना, तब छोटे बच्चे की सहायता उस समय तक जब तक वह सम्हले और फिर उसे एकबार स्वतन्त्र छोड़ देना – हमारे ईश्वर के सम्बन्ध में और हमारे जीवन के तरीके से सम्बन्धित हो सकती थी। जीवन एक तरीके से हमें चुनौती देता है जब हमारे भय वृहत्तर हो जाते हैं और हम आगे या उन पर बढ़ने से इंकार करते हैं। हम हर समय धमकी, अकेले और भयभीत महसूस करते हैं। ईश्वर माँ चील की तरह हर समय हमारे ऊपर, हमारे हर तरफ रक्षा करते हुए मंडराता है और तब अचानक ही हमारे पैरों के नीचे से हमारे घोंसला पर प्रहार किया जाता है और हमें केवल अकेला वातावरण और हवा में समझौता करने के लिए छोड़ दिया जाता है। जब

ऐसा महसूस होता है कि हम स्वतन्त्र रूप से गिरेंगे और टकराकर मौत को प्राप्त होंगे तो अचानक ही ईश्वर का रक्षात्मक हाथ या तो परिवार के द्वारा या दयालु अजनबियों द्वारा हम पर छा जाता है और फिर हम अपने आप स्वयं को सम्भाल लेते हैं।

बार–बार हमें अजनबी और अनिश्चित दुनियाँ में पटक दिया जाता है और चील के छोटे बच्चे की तरह माननीय, दयनीय दशा से टकराने में डरते हैं और तब हम अनिश्चित दुनियाँ में धकेल दिये जाते हैं, लेकिन जैसे ही हमारे हाथ ठंडे होने लगते हैं और भय से घिरने लगते हैं, ईश्वर हमारे ऊपर मंडराता है और हमें बचा लेता है। कभी–कभी हमारे समय की जानकारी भूल गलत हो सकती है। हमारी कुछ योजनायें हो सकती हैं और हम विश्वास करते हैं कि हम भविष्य की योजना क्रमबद्ध करेंगे। कभी–कभी हमारा समय ईश्वर की योजना से मेल कर जाता है और कभी–कभी मेल नहीं कर पाता, लेकिन माँ चील की तरह ईश्वर नियन्त्रण में होता है समय–समय पर हम विश्वास करते हैं कि ज्यादा समय तक अनिश्चितता में नहीं रह सकते। हम परिचित से जुड़ जाते हैं और जीवन में परिवर्तन स्थायी है तब चील और चील के छोटे बच्चे की तरह जो उड़ना सीखता है तो हमें जीवन की बड़ी और ब्रह्माण्ड की योजना में विश्वास करना होगा कि हम ईश्वर की हथेली पर बैठे हैं। हम कीचड़ में तड़फड़ा सकते हैं पर ईश्वर का रक्षात्मक हाथ हमें ऊपर उठायेगा और हमें टहलने और उड़ने में समर्थ बनायेगा। ईश्वर में एक अटल विश्वास जरूरी है।

एक भरोसो, एक बल, एक आत्मविश्वास।
एक राम, घनश्याम हित, चातक तुलसी दास।।

–संत तुलसी दास

शोक–संवेदना

अत्यन्त दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि हमारे गुरुभाई श्री अरुण कुमार मिश्र (अहमदाबाद) के कनिष्ठ पुत्र नीरज का 24 दिसम्बर 2006 को हृदयाघात के कारण देहावसान हो गया है। 35 वर्ष की छोटी सी आयु में इस प्रकार का बिछोह वास्तव में अत्यधिक दुःखद है। श्री अरुण कुमार जी एवं समस्त दुखित परिवार को इस महान वज्रपात को सहन करने की श्री प्रभुजी शक्ति प्रदान करें। 'सिद्धयोग' परिवार इस मार्मिक अवसर पर अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट कर रहा है....।

–सम्पादक

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या।

भृगु ने पिता के उपदेश पर विचार करके यह निश्चय किया आनन्द ही ब्रह्म है। ये आनन्दमय परमात्मा ही अन्नमय आदि सबके अन्तरात्मा हैं। वे सब भी इन्हीं के स्थूलरूप हैं। इसी कारण उनमें ब्रह्मबुद्धि होती है और ब्रह्म के आंशिक लक्षण पाये जाते हैं। परन्तु सर्वांश से ब्रह्म के लक्षण आनन्द में ही घटते हैं; क्योंकि ये समस्त प्राणी उन आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा से ही सृष्टि के आदि में उत्पन्न होते हैं – इन सबके आदि कारण तो वे ही हैं तथा इन आनन्दमय के आनन्द का लेश पाकर ही ये सब प्राणी जी रहे हैं – कोई भी दुःख के साथ जीवित रहना नहीं चाहता। इतना ही नहीं, उन आनन्दमय सर्वान्तर्यामी परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति की प्रेरणा से ही इस जगत के समस्त प्राणियों की सारी चेष्टायें हो रही हैं। उनके शासन में रहने वाले सूर्य आदि यदि अपना–अपना काम न करें तो एक क्षण भी कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। सबके जीवनाधार सचमुच वे आनन्दस्वरूप परमात्मा ही हैं तथा प्रलयकाल में समस्त प्राणियों से भरा हुआ यह ब्रह्माण्ड उन्हीं में प्रविष्ट होता है – उन्हीं में विलीन होता है, वे ही सब प्रकार से सदा–सर्वदा सबके आधार हैं। इस प्रकार अनुभव होते ही भृगु को परब्रह्म का यथार्थ ज्ञान हो गया। फिर उन्हें किसी प्रकार की जिज्ञासा नहीं रही। श्रुति स्वयं उस विद्या की महिमा बतलाने के लिए कहती है – वही यह वरुण द्वारा बतायी हुई और भृगु को प्राप्त हुई ब्रह्मविद्या (ब्रह्म का रहस्य बताने वाली विद्या) है। यह विद्या विशुद्ध आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में स्थित है। वे ही इस विद्या के भी आधार हैं। जो कोई मनुष्य भृगु की भाँति तपस्यापूर्वक इस पर विचार करके परमानन्दस्वरूप परमात्मा को जान लेता है, वह भी उन विशुद्ध परमानन्दस्वरूप परमात्मा में स्थित हो जाता है। इस प्रकार इस विद्या का वास्तविक फल बताकर मनुष्यों को उस साधना की ओर लगाने के लिए उपर्युक्त प्रकार से अन्न, प्राण आदि समस्त तत्वों के रहस्य विज्ञानपूर्वक ब्रह्म को जानने वाले ज्ञानी के शरीर और अन्तःकरण में जो स्वाभाविक विलक्षण शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उनको भी श्रुति बतलाती है। वह अन्नवान् अर्थात् नाना प्रकार के जीवन–यात्रोपयोगी भोगों से सम्पन्न हो जाता है और उन सबको सेवन करने की सामर्थ्य भी उसमें आ जाती है। अर्थात् उसके मन, इन्द्रियाँ और शरीर सर्वथा निर्विकार और निरोग हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वह संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से और **बड़ी भारी कीर्ति से समृद्ध होकर जगत् में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है।**

■■■

श्री रामलाल प्रभवे नमः।

महाप्रभु श्री रामलाल जी का पावन जयन्ती महोत्सव

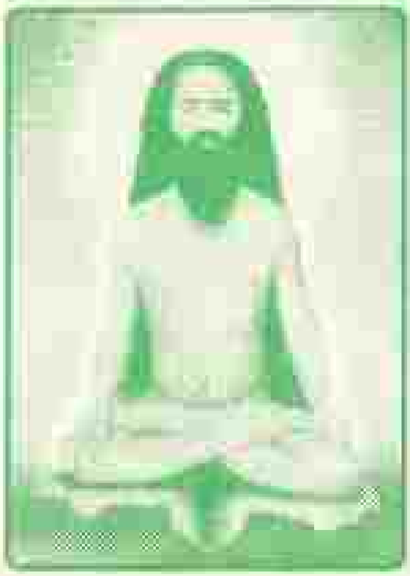

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा, सवाँई (आगरा) में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पावन जयन्ती (रामनवमी) का महोत्सव दिनांक २५-२६-२७ मार्च २००७ को धूम-धाम से मनाया जा रहा है।

सभी गुरुभाई-बहिनों से नम्र निवेदन है कि वे इस भव्य एवं विशाल आयोजन में सपरिवार एवं इष्टमित्रों सहित सम्मिलित होकर महाप्रभुजी एवं श्री गुरुदेव जी की इस तपःस्थली की तेजस रज से स्वयं को पवित्र बनावें तथा धर्मलाभ प्राप्त कर अपने आप को कृतार्थ करें।

जय गुरुदेव !

निवेदक :

समस्त आश्रमवासी

एवं श्रद्धालु भक्तगण

श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

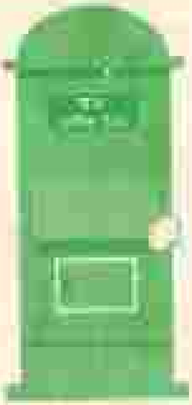

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक सामग्री पर स्पेस आवंटन (स्थान चार्ज) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. पोस्ट वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 3.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर की अन्दर या बाहर की दीवार अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की मेजों पर स्वास्थ्य जीवनरक्षक को कार्ड लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति कार्ड प्रतियोगिता कार्ड का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ______

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंथाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा